जाई-जुही

और

नदी की बाढ़

लेखक

श्रीविनायक सदाशिव सुखठणकर

अनुवादक

श्रीविश्वनाथ गंगाधर वैशम्पायन

सरस्वती प्रेस बनारस

"...निर्भय हो मैं तुमसे यह कह सकता हूँ कि जब मैं उनसे—देवदासियों से—बात कर रहा था तो मुझे उनकी आँखों में कहीं पाप-वासना दिखाई नहीं दी। बल्कि इसके विपरीत, दूसरी गृहस्थ स्त्रियों की तरह ही अच्छे चाल-चलन और सद्भावनाओं को हृदय में ग्रहण करने की अपरिमित शक्ति मैंने उनमें देखी..."

—महात्मा गांधी

अनुक्रम

१

'जुही ! जुही......'

सूर्यास्त के समय श्रीनागेश के मन्दिर के आसपास फैले हुए सुरम्य और शान्त वातावरण में ऊपर के शब्द इतनी साफ तौर से गूँज रहे थे कि स्नेह भरी उत्कण्ठा के कारण फैला हुआ वह मधुर-कम्पित स्वर द्वारा किसी भी सहृदय मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित किये बग़ैर नहीं रह सकती।

थोड़ी देर के बाद वे शब्द बार-बार सुनाई देने लगे 'जूही...जुही।'

एक दस-ग्यारह साल की बालिका आवाज देती हुई मन्दिर के प्राकार में इधर-उधर अपनी सहेली को ढूँढ़ रही थी। पहले उसने मन्दिर का सभा-मण्डप देखा, बाद में तुलसी-वृन्दावन, दीप्त स्तम्भ और अग्रशाला इत्यादि जो उनकी हमेशा की खेलने की जगहें थीं, ढूँढ़ डालीं। पर व्यर्थ। आखिर हारकर और निराश होकर जब वह टेकरी के नीचे अपने मकान की ओर ज्यों ही जाने के लिए मुड़ी, सहज ही उसकी दृष्टि बाईं ओर तालाब की तरफ मुड़ी और उसके किनारे बैठी हुई जुही को देखकर उसके मुख पर फैली हुई निराशा और खिन्नता न जाने कहाँ उड़ गई और उसके मुखपर आश्चर्य और आनन्द झलकने लगा। 'हम तालाब के किनारे बहुत कम खेलते हैं, फिर आज यह यहाँ आकर क्यों बैठी है' इस प्रकार सोचती हुई वह जल्दी-जल्दी उधर जाने लगी। बीस-पच्चीस क़दम चलने पर उसे शरारत सूझी और वह बीच में ही ठहर गई। उसकी आँखों में और मुँह पर एक शरारत भरी हसी प्रस्फुटित हो उठी। जिस जगह जुही बैठी थी, उस जगह को अच्छी तरह देख वह दबे पाँव रखती हुई आगे बढ़ी। थोड़ी ही देर में तालाब की ओर मुह किये बैठी जुही के पास पहुँचकर उसने उसकी आँखें हाथ से बन्द करनी चाहीं; परन्तु जैसे ही उसने उसकी आँखों को हाथ लगाया, उसने भीत हो हाथ पीछे खींच लिये। जुही की आँखों से बहनेवाले अश्रुओं से उसकी उँगलियाँ भीग गईं, इस कारण अपने हृदय में सोची हुई सारी शरारतों को उसे छोड़ देना पड़ा।

वह तुरन्त ही जुही के पास जा बैठी और बोली 'बहिन जुही ! भला यह क्या ? तू इस तरह इस निर्जन स्थान में आ बैठी है, फिर मुझे भला कैसे मालूम हो सकता था कि तू कहाँ है ? तुझे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते थक गई पर तू रोती क्यों है ? बता भी तुझे क्या हुआ है ?'

इन स्नेह भरे शब्दों को सुनकर जुही का दुख और भी उमड़ पड़ा। अब तक कभी-कभी गिरनेवाले आँसू अब मोतियों की लड़ी की तरह लगातार उसके गालों पर बहने लगे। सहेली के बार-बार पूछने के कारण उसके आँसू और भी उमड़ रहे थे। और फिर अपना दुख अपने किसी परम आत्मीय से कहने की उत्कट इच्छा प्रत्येक व्यक्ति में होती ही है। और फिर जुही का हाल ही में आई हुई इस सहेली के सिवाय और कोई परम आत्मीय नहीं था।

आखिरकार रोने के कारण उसकी हिचकी बंध गई और उसी दशा में टूटे शब्दों में वह बोली–जाई! आज माई ने मुझे बिना अपराध के मारा। मैं जल्दी-जल्दी घर से निकलकर तेरे यहाँ आ रही थी; लेकिन दरवाजे में ठेस लगकर गिर पड़ी। उस आवाज से पास ही पालने में सोई चन्द्री जग पड़ी और रोने लगी। झुला-झुलाकर मैं उसे सुलाने का प्रयत्न करने लगी, पर चन्दी का रोना सुन माई जो आँगन में कपड़े सुखा रही थी, क्रोध से अन्दर आई और चन्दी को जगा देने के अपराध में हाथ की लकड़ी से तीन-चार मुझे जमा ही तो दी। मैं सच बात बताना चाहती थी, परन्तु उन्होंने एक न सुनी...' यह कह वह चुप हो गई। जाई को यह सुनकर अत्यन्त दुख हुआ। जुही के सिर की ओर सहज ही उसकी दृष्टि गई। उसके सिर पर उसे एक बहुत बड़ी गुमड़ी दिखाई दी। उसे देखते ही 'कैसे बेदर्द हो भाई, तुझे बिना कारण ही इतना मारती है ?' ये दुख के उद्गार सहज ही उसके मुँह से निकल पड़े, आँखें डबडबा आईं और आँसू झर-झर झरने लगे।

अपने सहेली की यह अनुकंपा और सहानुभूति देखकर जुही गद्गद् हो गई। क्षण भर के लिए वह अपना दुख भूल गई। कुछ पास खसककर उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए कृतज्ञता-भरे स्वर में रुद्ध कण्ठ से वह बोली—

जाई भला तू क्यों रोती है ? तकदीर से तुझे यह तो कभी रोने की बारी नहीं आती है। तेरी मा तुझे कितने लाड़-प्यार से पालती है, फिर तेरा इस प्रकार रोना मूर्खता नहीं तो और क्या है ? अच्छा पोंछ तो अपने आँसू।'

जाई ने उत्तर दिया 'मेरा रोना अकारण कैसे है ? सच बताऊँ ? जब भी मैं तुझे दुखी या कष्ट में देखती हूँ तो मुझे भी दुख होता है! तुझे रोते देखती हूँ तो मुझे भी रोना आता है। अच्छा अब तू भी आखें पोंछ और मैं भी पोंछती हूँ। चल हम दोनों ही मेरे घर चलें। वहाँ मा तेरे सिर पर उठी गुमड़ी पर दवा लगा देगी। फिर तू अपने घर चली जाना।'

सौतेली मा—माई के कारण—जुही पर हमेशा ही ऐसे प्रसंग आ जाया करते थे और जब जब ऐसा प्रसंग उपस्थित होता, जाई उसे अपने घर ले जाकर अपनी मा की सहायता से सान्त्वना देने का प्रयत्न करती।

'तुझे रोते देखती हूँ तो मुझे भी रोना आता है।' जाई के उस दिन के इन सरल शब्दों में उसके संवेदना-पूर्ण और प्रेमी बाल हृदय का कितना सच्चा दिग्दर्शन हुआ था।

२

पिछले तीन-चार दिनों में श्रीनागेश—देवस्थान में कैसी धूमधाम हो रही थी। गोआ प्रान्त का श्रीनागेशी स्थान वैसे ही एक तीर्थ-स्थान है और फिर वर्ष के ये दिन तो उत्सव के ही थे। इसलिए दूर दूर से अपने कुल देवता के दर्शन हेतु आनेवाले सैकड़ों भक्तों के कारण गाँव में भीड़ बहुत हो रही थी। मन्दिर में कथा, कीर्तन, भजन, आरती और मूर्ति का पालकी में जुलूस निकलना इत्यादि रोज़ ही हुआ करता था। चारों ओर ख़ुशी का वातावरण फैला हुआ था। परन्तु जाई और जुही उत्सव शुरू होने के दिन से ही उतनी प्रसन्न नहीं दिखाई देती थीं, जितना कि उन्हें होना चाहिए था। उत्सव के कारण एक भारी समस्या उनके सामने आ खड़ी हुई।

जाई की माँ एक नाचनेवाली थी और नागेश देवस्थान की पुश्तानपुश्त दासी वृत्ति उसके कुल में चली आ रही थी। अपनी जवानी में वेश्या-वृत्ति कर उसने बहुत-सा धन कमा रखा था। पेट भरने के लिए देवस्थान की छोटो-

मोटी तनख्वाह पर निर्भर रहने की उसे कोई आवश्यकता नहीं थी, परन्तु श्री नागेश की सेवा का वंशपरंपरागत अधिकार छोड़ देने के लिए उसका भावुक मन तैयार नहीं था। बहुत वर्षों से उसके हिस्से में आये हुए मन्दिर के नित्य के अनेक काम नियमित रूप से करने की उसकी परिपाटी थी। विशेषतः इन होनेवाले उत्सवों के विशेष अवसरों पर फूल चुन लाना, उनकी मालाए बनाना, पूजा के बर्तन और देवताओं के वस्त्रालंकार धो-पोंछकर साफ़ करना मन्दिर की झाड़ू-बुहारू करना, दीवटों में तेल डालना इत्यादि कामों में वह दिन भर व्यस्त रहती थी। इस साल उत्सव शुरू होते ही सब काम यथा-समय हो जाने के लिए उसने जाई को अपने साथ मदद के लिए ले लिया था; इस कारण पिछले तीन-चार दिनों से जाई को सुबह से शाम तक मा के साथ मन्दिर में ही रहना पड़ता था। उसके और जुही के आमोद-प्रमोद में विघ्न डालनेवाली यही बात थी। इस कारण उन्हें न तो साथ साथ घूमने को ही मिलता था और न खेलने को। एक दूसरे से मिले बिना उन्हें कुछ भूला भूला सा मालूम होता था। दोनों ही एक दूसरे को देखने के लिए बेचैन रहती थीं। ऐसी दशा में भी एकाध बार ज्यों ही जाई को काम से थोड़ी-सी भी फ़ुर्सत मिलती, उत्सव के आनन्द को साथ लूटने के इस छोटे से अवसर को भी वे बेकार न जाने देतीं।

भाग्य से आज दोपहर को ऐसा ही अवसर मिल गया। उस दिन गजरा बाई का काम शीघ्र ही समाप्त हो चुका था। और अब यह निश्चय और स्वाभाविक ही था कि जाई जुही के घर दौड़ जाय। परन्तु रास्ते ही में मदारी का खेल देखती हुई लड़कों के झुंड में जुही उसे दिखाई दी। उसने उसे पुकारा। पुकार सुनते ही घूमकर देख प्रसन्न हो जुही दौड़ती हुई जाई के पास आई और उतावली हो उससे बोली—'जाई तुझे बड़ी मज़ेदार बात कहनी है, उसे सुनाने के लिए इन दो दिनों से मैं तेरी बड़ी उत्सुकता से बाट जोह रही हूँ—पर तुझे कसम है जो तू क्षण भर के लिए भी मिल जाती, मानो यदि तू वहाँ न हो तो मन्दिर के सारे काम अटके रह जाते। चल जा। चल जा तुझे वह बात अब नहीं सुनाऊँगी।

'रूठी रूठी रानी, पती ने दिया गरी का टुकड़ा,
खिल उठता तब जुही का मुखड़ा।'

जुही की ठोड़ी को हाथ लगाकर लड़कियों का यह पेटेण्ट चुटुकुला ज्यों ही जाई ने साभिनय और मधुर गाने के स्वर में कहा, जुही का बनावटी क्रोध न जाने कहाँ भाग गया। वह हँस पड़ी।

दो दिन तक इस रहस्य को अपने ही तक सीमित रख जुही अपनी सहेली से मिल उसे कह देने के लिए व्याकुल हो उठी थी। वह उस घड़ी की बड़ी व्यग्रता से प्रतीक्षा कर रही थी, जब कि वह अपने इस रहस्य को अपनी सहेली से कहे। आखिरकार इस हँसी में ही रुठना समाप्त कर वह बोली—'बस भी कर! हँसी बहुत हुई। अब मैं तुझे बताये देती हूँ। चलो हम लोग उस कटहर पर जा बैठें, नहीं तो ये प्रेमा, दुर्गा, मथी सभी जमा हो जायेंगी और सुनेंगी।

दोनों ही कटहरे पर जा बैठीं और तब जुही ने अपना रहस्य कहना आरम्भ किया:—

परसों क्या हुआ कि सभा-मण्डप में राम भट पालकी सजा रहे थे और मैं पास में वह सब देखती खड़ी थी। थोड़ी देर में मैंने जो बाईं ओर देखा तो एक बूढ़े बाबा खम्भे से टिककर बैठे टकटकी बाँधे मेरी ओर देख रहे थे। बीच-बीच में सुपाड़ी के टुकड़े और पान लेकर अपने मुँह में ठूँसते जाते थे। वे इतने मोटे थे कि जिसका कुछ हिसाब नहीं देख उनका एक-एक पैर खम्भे के बराबर मोटा था। हाँ उनके कपड़े भी बड़े अजीब थे—चार इञ्च चौड़ी लाल किनारी की धोती, नीचे पैरों तक लटकनेवाला और फैला हुआ लम्बे-लम्बे बटनों का कोट, एक बड़ी-सी पहिये जितनी पीली पगड़ी और सबसे अजीब बात तो यह थी कि नाक पोंछने के लिए रूमाल की जगह उन्होंने एक धोती गले में लपेट रखी थी। उन्हें इस प्रकार मेरी ओर टकटकी बाँधे देख मैं तो शर्मा गई बहन। मैं वहाँ से भागकर तुलसी-वृन्दावन के पास जा खड़ी हुई, परन्तु मेरे पीछे-पीछे वे हजरत भी वहाँ जा पहुँचे। मेरे नजदीक आकर खड़े हो प्रश्नों की झड़ी बाँध दी, तू कौन है? तेरा नाम क्या? तेरा घर कहाँ? इत्यादि इत्यादि। और सबसे मजे की बात तो यह थी कि

पहिले तो मैं उनके प्रश्नों का उत्तर देती रही ; परन्तु बाद में मराठी में पूछे हुए उनके प्रश्न न तो मैं समझ सकी और न ही मेरे दिये हुए उत्तर (कोकन की भाषा में) उनकी समझ में आये। यह तमाशा देख आस पास के लोग मेरी ओर देख हँसने लगे। तब तो भाई मैं बड़ी शर्मिन्दा हुई। मैं वहाँ जो भागी तो घर आकर ही साँस ली।

इतना कहकर अभी तक मुस्कुरानेवाली जुही खिलखिलाकर हँसने लगी। और जुही की इस रोचक घटना को सुन जाई भी खिलखिलाकर हँसने में जुही का साथ देने लगी।

थोड़ी देर में जुही अपनी हँसी रोक बोली—'अरी इतने पर ही तो बात खतम न हुई। दूसरे दिन सवेरे ही रामभट मेरे घर आये और मेरे बाबा के साथ अकेले में बाते कर चले गये। जाते समय सिर्फ पड़ोसी का कर्तव्य ही सोचकर मैंने ये बातें तुम्हें सुझाई हैं, सोचकर देखो। जोर से कहे गये ये शब्द मुझे सुनाई दिये। बाद में शाम को फिर रामभट हमारे यहाँ आये। परन्तु इस बार उनके साथ वे मोटे बूढ़े बाबा जिन्होंने उस दिन मुझे उलझन में डाल दिया था, मेरे बाबा से मिलने आये। दीवानखाने में अँधेरा होने तक वे बाबा से बड़ी देर तक बातें करते रहे, परन्तु उसका एक अक्षर भी मैं न सुन सकी। लेकिन रात को जब मैं खाना खाकर बिस्तर पर जा लेटी, उस समय बाबा और माई उस बूढ़े सज्जन के विषय में जो बातें कर रहे थे, वे मैंने सुनीं।

बाबा ने कहा—'वे सज्जन बड़े खानदानी हैं। अमीर तो इतने हैं कि उनकी अपनी मोटर है। उनके लड़के की रामभट बहुत तारीफ़ करते थे। पिछले साल जब वह अपने पिता के साथ उत्सव में आया था, तब उन्होंने उसे अपनी आँखों देखा है। ये सब बातें अच्छी होते हुए भी बेलगाँव जैसी दूर जगह लड़की देना ज़रा खटकता है।'

माई ने उत्तर दिया—'गाँव ज़रा दूर है तो क्या हुआ ? ऐसी छोटी-छोटी बातों का हौवा बनाकर यह आया हुआ मौक़ा गँवा देने पर सारा गाँव हमारी हँसी उड़ायेगा। लड़की का रंग-रूप देखकर ही उन्होंने मँगनी की है। बेचारे बड़े सज्जन हैं ; न तो दहेज माँगते हैं और न कुछ और। ऐसा घर बड़े भाग्य

से मिलता है। और फिर यदि एक-दो साल बाद लड़की को घर ढूँढ़ने के लिए दरवाज़े-दरवाज़े जूतियाँ चटकाकर किसी के आगे एक हज़ार रुपए बड़ेलने की इच्छा हो तो फिर अच्छी बात है। मैं कुछ भी न कहूँगी। लेकिन एक बात समझ रखिए कि मेरी यही अकेली लड़की तो नहीं है—सुशीला, कमलचन्द्री चन्द्री भी तो है।' इसके बाद बाबा ने कोई उत्तर नहीं दिया। लेकिन माई कहे जा रही थी और बाबा 'हूँ, हूँ' करते जाते थे। थोड़ी देर में मुझे भी न जाने कब नींद आ गई।

उसके बाद उन दोनों सहेलियों में बड़ी देर तक बहस और सलाह होती रही कि जुही की यह समस्या अच्छी है या बुरी? उसके बाबा-माई के कहने के अनुसार करेंगे या? और शादी तय हो जाने पर क्या जल्दी ही कर दी जायगी? इन सब गुत्थियों को सुलझाने के लिए उनकी छोटी सी बुद्धि असमर्थ थी; इसी कारण बातों ही बातों में शाम हो गई; फिर भी समस्या हल न हो सकी। आखिर पास के नगारखाने से शाम की नौबत बजनी शुरू हुई तब उन्हें होश हुआ। जुही अपने घर की ओर चली और जाई दूसरे दिन की पूजा-सामग्री तैयार करने में, अपनी मा की सहायता करने के लिए जल्दी-जल्दी मन्दिर की ओर चल दी।

३

दो दिन के बाद उत्सव समाप्त हुआ, चारों ओर पहिली-सी शान्तता फैलनी शुरू हुई। मन्दिर के काम का भार कम हुआ और गजराबाई को आराम करने की फ़ुर्सत मिली और इसी लिए जाई को भी फिर पहिली-सी आज़ादी मिल गई—सब से पहिली बात जो उसने की, वह थी जुही से मिलने जाना—दो दिन पहिले जो उनकी ख़ास बातचीत हुई थी, उसके बाद जुही न तो उसे मिली ही थी और न उसे कभी दिखाई दी थी; इसी लिए आज वह उससे मिलने के लिए बहुत उतावली हो रही थी। उसके घर पहुँचते ही उसने देखा कि जुही बैठी चावल बीन रही है। परन्तु आज लहँगा न पहनकर एक मोटी-झोटी धोती पहिने है। और वह भी अच्छी तरह न पहिन सकने के कारण बड़ी बेडौल लग रही थी। बस इसी लिए उसकी ओर देखते ही जाई

अपनी हँसी न रोक सकी। उसके हँसने का शब्द सुनते ही जुही ने ऊपर सर उठाकर देखा और उसी समय उसके ओठों पर एक हँसी की लहर दौड़ गई, फिर भी उसके मुँह पर छाई चिन्ता की काली घटाएँ जाई से न छिप सकीं। वह जुही के पास बैठते हुए बोली—'क्या अभी से दुलहिन बन गई। इस प्रकार प्रश्न करते उसने जुही के चावल बिनवाना शुरू किये। वे इतने धीरे बातें करने लगी कि पास ही रसोई-घर में बैठी भाई की न सुनाई दे।

'हाँ अब से लहँगा न पहनने की भाई की आज्ञा है। उन्होंने कहा है कि अब मुझे साड़ी पहिनने की आदत डालनी चाहिए।

'वह किसलिए री?'

'मेरी शादी तय हो चुकी है। परसों हम लोग और रामभट उन महाशय के साथ शादी के लिए बेलगाँव रवाना होनेवाले हैं।'

'सचमुच! इतनी जल्दी?'

एक आह भरकर जुही ने कहा 'हाँ।'

इसके बाद खिन्नमना हो दोनों ही चावल बीनती रहीं; परन्तु आखिर जाई से बोले बग़ैर न रहा गया। उसने जुही से कहा 'क्यों री जुही, तेरे बाबा और भाई तेरी शादी की इतनी जल्दी क्यों कर रहे हैं, सच पूछो तो अभी तू कोई बड़ी नहीं हुई है, दो महीने पहिले तेरी बुआ की लड़की की शादी हुई है। वह तो तुझसे इतनी बड़ी है कि तू उसके कंधे तक भी नहीं पहुँचेगी।'

न जाने बिचारी जुही ने उसे क्या उत्तर दिया होता; लेकिन जाई की बात समाप्त होते न होते ही चौके में एक ज़ोर की आवाज़ हुई और जुही को उत्तर देने की नौबत ही न आई।

बातों में ध्यान न रहने के कारण जाई के आख़िरी शब्द भाई के कानों तक पहुँच ही तो गये। उसे सुनकर भाई क्रोध से जल उठी तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं थी।

'बाप रे बाप! इतनी-सी छोकरी कैसी बुढ़िया की तरह ज़बान चला रही है। और इसका दिमाग तो देखो, मानों भाई से अधिक जुही की इसे ही चिन्ता है। कहा है न कि जात का असर नहीं जाता झूठ थोड़े ही है।'

कर्कश स्वर में कहे गये भाई के ये शब्द सुनकर जाई की जान निकल गई। फिर आगे कुछ कहती हुई भाई रासोईघर से बाहर निकल आईं। आँखें निकालकर हाथ मटकाते हुए वह जाई पर बरस पड़ीं। उन्होंने ऐसी भीषण मुद्रा बनाई कि बेचारी जाई को एक क्षण भी जुही के पास बैठने की हिम्मत न हुई।

'अरी चुड़ैल! अभी जुही की शादी नहीं करनी तो क्या तेरी तरह धींग बनाकर जनम भर घर में रखना है।' यह उनकी अन्तिम घन-गर्जना सुनते ही जाई जुही के घर से भाग खड़ी हुई।

इस घटना से जाई को कितना दुःख हुआ, इसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। सीधे-सादे इन शब्दों के आधार पर अब भाई बड़ा भारी तूफ़ान खड़ा कर देंगी। वे अड़ोसी-पड़ोसियों तथा माँ से इस बात की चर्चा कर बदला लेंगी। और उसी प्रकार उसका बदला जुही से लेंगी। उसी के कारण तो जुही को मार और ताने सहने पड़ेंगे, इत्यादि बातें जाई अच्छी तरह जानती थी।

अनजाने में यह जो उससे छोटी सी भूल हो गई थी, उसका एक और भयंकर परिणाम भी उसे भोगना पड़ेगा और वह यह कि अब उसे जुही के घर आने-जाने को नहीं मिलेगा और न ही उसकी हिम्मत ही वहाँ जाने की होगी। जुही को भी माई इस घटना के बाद जुही को एक आदर्श बहू बनाने के लिए जो पाठ पढ़ा रही है और इसी लिए अब वह घर के बाहर क़दम न रख सकेगी। वह चाहती थी कि जुही से विच्छेद होने के पूर्व इस दो दिन के समय में वह उसके साथ खूब रह ले, अपनी पसंद के खेल जी भरकर खेल लें; मन्दिर के पीछेवाले बरगद पर डले झूले पर उसके साथ गा और झूल ले. कुछ बची आपस की प्रेम की बातें कर ले। ये सब विचार जुही के घर आते-आते उसके दिमाग़ में उठे थे; परन्तु इस घटना ने तो उन सारी आशाओं पर पानी फेर दिया।

इन कारणों के साथ उसके हृदय में ठेस पहुँचानेवाला एक और कारण हो गया था। जो हीन कर्म (नाचने, गाने का) उसकी जाति करती है, उसे

और कोई नहीं करता और जाई इन सब बुरे कर्मों से परे कैसे रह सकती है—भाई ने इस प्रकार का ताना दिया था इससे उसे और भी अधिक दुख हो रहा था।

कभी कभी एक बात अनजाने ही किसी दूसरी विभिन्न बात में रूपान्तर कर जाती है। अपने बुरे स्वभाव के कारण जाई पर गालियों की बौछार करते समय केवल उसे नीचा दिखाने के लिए ही भाई ने उसकी जाति पर भी छींटा कस दिया था। अपने दोषों को सुनते सुनते बेशर्मी हो जाने की प्रवृत्ति कम से कम अभी जाई के भोले हृदय में घर नहीं कर पाई थी; इसी कारण जाई के लिए यह बात साधारण न रही। उसके हृदय पर उसका परिणाम हुआ और इसी लिए 'क्यों नहीं क्या तेरी तरह धींग बनाकर जन्मभर घर में रखना है?' भाई के इन शब्दों में भरे तिरस्कार और हीनता उसके हृदय में चुभ गई। दूसरी जाति की लड़कियाँ विवाहित होकर ससुराल जाती हैं और उसकी जाति में ऐसा कुछ नहीं होता, यह बात वह अच्छी तरह जानती थी। परन्तु विवाह होनेवाली बात को लोग प्रतिष्ठित और अच्छा समझते हैं और न होनेवाली बात नीच और घृणित। यह विचार आज पहिली ही बार उसके दिमाग़ में आया और इसी कारण उसके सरल मस्तिष्क में एक तूफ़ान खड़ा हो गया। इन दोनों बातों की अच्छाई-बुराई की यथार्थ कल्पना इस छोटी उमर में उसके मस्तिष्क में अभी तक उत्पन्न नहीं हुई थी; इस कारण मस्तिष्क में उठे इस भयंकर तूफ़ान का कहीं अन्त नहीं हो रहा था और इस आघात की चोट उसके हृदय पर सदा के लिए अमिट बन बैठी। जीवन में कभी भी और खासकर बचपन में, चित्तवृत्तियों को झकझोर देने का कारण बननेवाली कितनी ही विचित्र घटनाएँ मनुष्य के हृदय पर जो संस्कार अंकित कर जाती हैं, चाहे वे उस समय छोटे ही क्यों न दिखाई दें और बाद में जीवन में होनेवाली अनेक घटनाओं के नीचे उनकी स्मृति भले ही दब जाय, फिर भी समय आने पर वे किस प्रकार सजीव होकर किसी व्यक्ति के हृदय में एक क्रान्ति उत्पन्न कर देने का कारण बन जाते हैं; इस तत्व का विश्लेषण क्या मानस-शास्त्रवेत्ता भी कर सकेंगे?'

इस घटना को होकर दो दिन कभी के बीत गये और आखिर जुही के घर के लोगों का बेलगाँव जाने का समय आ पहुँचा। दोपहर को तीन बजे जाई ने दो बैलगाड़ियाँ उनके घर के सामने देखीं। उन्हें देखते ही वह तुरन्त अपने घर से निकल, जुही को देखने के लिए एक बैलगाड़ी के पीछे जा छिपी। इस तरह वह वहाँ पर उत्कंठित और खिन्न हृदय से आध-पौन घंटा खड़ी रही। अन्दर जाकर जुही से मिल आने की उसे बार-बार इच्छा हो रही थी, परन्तु भाई के डर से उसे अपनी इच्छा पूर्ण करने का साहस नहीं हो रहा था। आख़िरकार जुही और उसके घर के लोग बाहर निकले। उनसे मिलने के लिए अड़ोस-पड़ोस की स्त्रियों और बच्चों के झुण्ड के झुण्ड उनके आस-पास जमा हो गये। उनमें से बहुत-सी बूढ़ी औरतें इस बात की सलाह दे रही थीं कि किस प्रकार बरातियों को हराया जा सकता है। इसके उदाहरण दे-देकर समझा रहीं थी और माई भी इस बात को दिखाने की चेष्टा कर रही थी कि ये सारी बातें वे पहिले से ही जानती हैं। इधर बाक़ी बची पड़ोसिने जुही को यह समझा रहा थीं कि ससुराल में किस तरह रहना चाहिए और कितनी ही बातें जो ससुराल में हुआ करती हैं, उन्हें भी वे उसे बता दे रही थीं। जुही भी उनकी बातें सुन-सुनकर 'हूँ, हूँ' करती जाती थी। परन्तु उसकी आँखें दूर खड़ी और दीनता से देखती हुई जाई पर लगी हुई थीं। वह सोच रही थी कि यदि उसे इस उपदेश सुनने के बजाय अपनी सहेली से उतनी देर बातें करने को मिल सकता तो वह उससे ख़ूब बातें करती और उससे बिदा लेती। उसमें उसे कितना आनन्द मिलता। परन्तु दोनों में से किसी को भी हिम्मत सहेली के पास जाने की न होती थी। कारण थोड़ी देर पूर्व ही माई को क्रोध से जुही की ओर देखते जाई ने देखा था।

थोड़ी देर में ही जुही के पिता जयवंतराव और उनके भावी समधी श्रीनिवास पंत तथा रामभट भी बाहर निकल आये और देर हो जाने के कारण गाड़ीवानों को गाड़ी जल्दी हाँकने को कह वे अगली गाड़ी में जा बैठे। माई जुही और दूसरे बच्चे पिछली गाड़ी में बैठ गये। तुरन्त ही अगली गाड़ी

चल पड़ी। पिछले गाड़ीवाले ने भी बैलों के गर्दन को एक झटका देते हुए रास हाथ में ली। इतने ही में सड़क पर दूर खड़ी जुही गाड़ी की खिड़की के पास आ पहुँची। उसके मुँह पर यह दृढ़ विश्वास स्पष्ट झलक रहा था कि भाई के डर से अब वह नहीं घबरायेगी। वह किसी भी तरह जुही से बातें किये बिना न रह सकेगी।

'जुही जा रही हो?' उसके रुँधे कण्ठ से ये शब्द किसी प्रकार बाहर निकले।

जुही की भी वही हालत हुई; उसकी आँखों में भी अश्रु भर आये। 'हाँ' केवल इतना ही उसके मुँह से निकल सका। 'अब कब लौटोगी?' जाई के इस प्रश्न का उत्तर जुही बेचारी कुछ भी न दे सकी।

इतने ही में 'क्यों री, उस बदमाश लड़की से तू कौन-सी रहस्य की बातें कर रही है? चल आ इधर! रामा गाड़ी हाँक' भाई के क्रोध से कहे गये इन शब्दों ने दोनों को अलग कर दिया।

तुरन्त ही गाड़ियाँ चल पड़ीं। चलती गाड़ी में ही जाई ने अपने लहँगे में छिपाया हुआ एक दोना जुही को दिया। बरगद के पत्ते से बने इस दोने में क्या था? करौंदे, जामुन और गचिया काजू की गिरी। आज सवेरे ही जाकर अपने घर के पिछवाड़े की पहाड़ी पर से जाई अपनी सहेली के लिए यह सौगात तोड़ लाई थी।

वह बहुत देर तक गाड़ी की ओर देखती वहीं खड़ी रही। जाई भी गाड़ी से एकटक जुही की ओर निहार रही थी। थोड़ी देर में ही रास्ते के मोड़ पर गाड़ी झाड़ियों और गर्द के पीछे ओझल हो गई।

४

जुही की शादी कर उसके रिश्तेदार कभी के बेलगाँव वापस आ चुके थे। लेकिन जुही ससुराल में ही रह गई थी। इसके बाद बहुत दिनों तक नागेशी गाँव की स्त्री-परिषद् का मुख्य विषय यही हुआ करता था कि जुही की शादी बड़ी धूम-धाम से हुई; जुही की सास के तेज मिजाज की होने के कारण कैसी

कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और किस चतुराई से माईं उन कठिनाइयों से बच निकलीं, इत्यादि। जब माईं यह सब सुनाया करतीं तो जाई भी जुही का समाचार सुनने के लिए उत्कंठित रहती थी, परन्तु जब उसने देखा कि उन बातों में जुही की तो बात ही नहीं होती, तब उसने सुनना ही छोड़ दिया। अब उसके दिल में यही एक आशा बाक़ी रह गई थी कि आज या कल—एक न एक दिन जुही मायके अवश्य आयेगी और तभी उस से उसकी मुलाकात हो सकेगी। बरसों बीत गये परन्तु यह अवसर ही न आया। जुही के पिता उसे कई बार बुलाने का इरादा करते परन्तु जब माईं बड़ी ममता दिखाकर, दस-पाँच कोस दूर फैले हुए बुख़ार का डर और सफ़र में जुही को होनेवाले कष्टों का भूत सामने खड़ा कर देतीं तो वे अपना विचार स्थगित कर देते। इसी प्रकार की बातें जब माईं अपने पड़ोसियों से कहतीं तो जाई उन्हें सुनकर निराश हो जाती। फिर भी उसके लिए एक सान्त्वना की बात यह मिल जाती थी कि जुही के पिता जयवंतराव खुद जुही के ससुराल जाकर उसकी खोज-ख़बर ले आया करते थे और वह समाचार किसी न किसी प्रकार जाई सुन लिया करती थी।

जुही का साथ छूट जाने पर, शुरू-शुरू में, जाई की बिलकुल तबियत न लगती थी और बार-बार उसकी स्मृति उसे उदास बना देती। परन्तु धीरे-धीरे यह अवस्था बदलने लगी। इसका कारण यह नहीं था कि वह अपनी सहेली को भूलने लगी थी, बल्कि आजकल उसे मन बहलाने का नया साधन मिल गया था जिससे उसका मन बहला रहता था। आजकल उसकी माँ ने उसे गाना-बजाना और नाचना सिखाना शुरू किया था। इसमें क़रीब-क़रीब सारा दिन समाप्त हो जाता था।

जाई, गजराबाई के ढलती जवानी का एकलौता सहारा थी। और इसी कारण वह उसे बहुत प्यार करती थी। और इसी कारण बचपन ही से जाई में जो अनेक स्वाभाविक गुण दिखाई दे रहे थे, उनका उपयोग कर और साथ ही जाई के स्वाभाविक सौन्दर्य की ओर दृष्टि रख थोड़े ही वर्षों में अपने व्यवसाय में सबसे बढ़कर तैयार करने की गजराबाई की इच्छा थी। इसी

दृष्टिकोण को सामने रख जाई को ख़ूब आराम और सुख देकर उसने पाला पोसा।

अब इन्हीं पाँच-छः वर्षों में जाई पर ठीक तौर से नज़र रख अपना रोज़गार सिखाने से ही आज तक हृदय में पली गजराबाई की महत्त्वाकांक्षाएँ साकार हो सकती थीं। और यही सब सोचकर विचारशील और व्यवहार-पटु गजराबाई ने कोई बात उठा न रखी।

गजराबाई जब जवान थी, तब पास के एक गाँव के ज़मींदार उस पर बहुत मेहरबान थे। उससे खसोटे हुए रुपयों से गजराबाई ने अपना घर भर लिया था। पर आज तक उसमें से उसने कभी एक पाई भी ख़र्च नहीं की थी। परन्तु उसकी यह कंजूसी जाई के लिए पैसे ख़र्च करने में बाधक न हुई। वह दिल में सोचा करती कि खेती काटने के लिए बोने में दाने ख़र्च करने पड़ते हैं। इतनी दूरन्देशी उसमें थी। धीरे-धीरे खाने-पीने के मामलों में जाई का मा अधिक लाड़ करने लगी। अच्छे-अच्छे जेवर और कपड़े पहिनने का शौक उसमें उत्पन्न कराया गया और इस विषय की उसकी सारी इच्छाएँ पूरी की जाने लगीं। सबसे अधिक जिस बात पर गजराबाई ज़ोर देती थी, वह था जाई का शास्त्रोक्त रीति से गाना-बजाना और नाचना सीखना। इसकी कुछ प्रारम्भिक शिक्षा तो उसने पहिले ही दे रखी थी और अब आस-पास के गाँवों से अच्छे गानेवालों को बुलाकर अच्छी तनख़ाहें दे वह उन्हें जाई को गाना-बजाना सिखाने के लिए रख लेती थी। और जाई भी कला सीख अपने मा के परिश्रमों को सफल बनाने लगी। ललित कला एक ऐसी कला है जो सभी को अच्छी लगती है, और जाई को तो बचपन ही से इसका संस्कार हो चुका था, ऐसी दशा में यदि वह घण्टों इसकी तालीम में बिता देती थी तो कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। परन्तु इस कला को वह इसी लिए पसन्द करती थी कि उसमें उसे सात्त्विक आनन्द प्राप्त होता था और इसके परे उसकी दृष्टि में उसकी कोई उपयोगिता नहीं थी। उसकी व्यावहारिक उपयोगिता की गजराबाई कभी-कभी जाई का ध्यान आकर्षित कराती परन्तु इस बात का उस पर बहुत कम असर होता। और गजराबाई

भी अभी इस विषय को अधिक महत्त्व-पूर्ण न समझ चुप हो जाती।

इस प्रकार तीन-चार साल बीत गये। इस समय में जाई नाचने-गाने में इतनी मशहूर हो गई कि आस-पास के गावों में उसका नाम हो गया। बेफिक्र जीवन और गाँव की साफ़-सुथरी आबोहवा में उस पल उसका शरीर सुन्दर और सुदृढ़ हो उठा। उसकी बिरादरी की सुन्दर और महशूर नाचने-वालियों को भी यह दहशत पैदा हो गई कि थोड़े ही दिनों में जाई उनके व्यवसाय में उनकी प्रतिस्पर्धी होकर कहीं उन्हें परास्त न कर दे।

और इसी कारण, आसपास के जमींदारों, सेठ-साहूकारों और सरकारी अफ़सरों की उदारता और पैसे की तारीफ़ करने के लिए दलाल लोग गजरा-बाई के घर आ-आकर जूतियाँ चटकाने लगे। परन्तु उन सबको ही नाचने के लिए लम्बी रकमें मिलने पर भी उसने केवल जाई का महत्त्व बढ़ाने के लिए इन्कार कर दिया।

'जहाँ पकता है, वहाँ बिकता नहीं' यह व्यापारी तत्त्व अपने लड़की के सौन्दर्य बेचने में कितना उपयोगी होगा, यह बात गजराबाई अच्छी तरह जानती थी। इसके सिवा उसकी यह धारणा थी कि जाई की जो कीमत वह लेना चाहती है, उसे देने की शक्ति उसके सूबे में किसी की नहीं है। वह इस बुढ़ापे में तब तक मरना नहीं चाहती थी, जब तक कि जाई बम्बई के किसी लखपती भाटिया, बनिया, जागीरदार या और किसी संस्थानिक को अपने रूप-जाल में न फाँस ले।

कितने ही दिनों से, जाई को लेकर गजराबाई का विचार बम्बई जाने का था और बम्बई में रहनेवाले अपने एक मौसिया भाई से वह इस विषय में पत्र-व्यवहार कर रही थी। आख़िर एक दिन उसका यह मौसिया भाई रघुदादा उसके गाँव आ पहुँचा। इधर कई साल से रघुदादा ने जाई को नहीं देखा था, परन्तु अब उसका अनूप सौन्दर्य तथा नाचने-गाने को देख वह बहुत प्रसन्न हुआ। उसने गजराबाई को आश्वासन दिया कि बम्बई पहुँचने भर की देर है, बस उसकी सारी आशाएँ पूरी हो जायँगी।

रघुदादा बड़ा उद्योगी आदमी था। उसे अपनी बहन को दिये वचन को

पूरा करने की जल्दी हो रही थी। इतने दिन तक अपने दिल में ही संचित रँगीले सुख-स्वप्नों को साकार देखने के लिए गजराबाई अधीर हो रही थी। इस कारण रघुदादा के आने के दो ही चार दिन बाद घर छोड़कर बम्बई जाने की तैयारियाँ होने लगीं। जाने के एक दिन पूर्व गजराबाई ने सत्य-नारायण की कथा कराई और पुरोहित रामभट के बताये मुहुर्त पर उन लोगों ने नागेशी गाँव से प्रयाण किया। जाते समय श्री नागेश का अत्यन्त भक्ति-भाव से दर्शन कर तीर्थ और प्रसाद लिया और पास में रखने के लिए भभूत तथा तावीज लेना भी गजराबाई न भूली।

५

बम्बई पहुँचकर जाई के कुछ दिन ख़ुशी में निकल गये। कारण ऐसा कोई दिन नहीं जाता था जब रघुदादा उसे नाटक, सिनेमा या कोई देखने योग्य जगह दिखाने न ले जाता हो। परन्तु जब रघुदादा और गजरा बाई ने उसे उसका व्यवसाय सिखाना शुरू किया तो उसे चिन्ता और अस्वस्थता व्यापने लगी।

पाप, पुण्य, धर्म और नीति के पाठ आज तक उसने किसी से नहीं सुने थे। पढ़-लिख जाने के बाद जो स्वतंत्र विचार-शक्ति उत्पन्न होती है वह भी उसमें न थी। फिर भी 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' में निसर्गत: प्रवृत्ति रखनेवाले लोग हमें इस संसार में बहुत-से दिखाई देते हैं। हमें उनकी उस प्रवृत्ति का उद्गम-स्थान न मिले, फिर भी उसके अस्तित्व में अविश्वास नहीं किया जा सकता और सुदैव से जाई भी ऐसे ही भाग्यशाली व्यक्तियों में से एक थी।

उसने आजतक भविष्य जीवन की घटनाओं पर कभी विचार नहीं किया था। फिर भी जब-जब वह अपने बचपन के दिन याद करती तथा उन दिनों की याद करती जो उसने जुही के साथ बिताये थे और उन सुखदायक घटनाओं के साथ दुख के वे दिन भी उसे स्मरण हो आते जब जुही की शादी तै हो चुकी थी और माई ने उसे डाँटा था। आज भी उन घटनाओं का डरावना चित्र उसकी आँखों के सामने नाच उठता है। 'जुही को आजन्म

तेरी तरह साँड बनाकर घर रखना है ?' माई के अत्यन्त तिरस्कार और घृणा भरे शब्दों का गर्जन उसे सुनाई देने लगता। गजराबाई के संसर्ग से जो कलुषित विचार उसके हृदय में प्रवेश करते थे, वे इन शब्द के स्मरणमात्र से ही तिरोहित हो जाते और उसकी सद्भावनाएँ जागृत हो उन कलुषित विचारों को कहीं दूर ढकेल आतीं।

इस प्रकार दूषित वातावरण में पलने पर भी निष्पाप अन्त:करणवाली जाई को गजराबाई और रघूदादा की टिर-टिर अरुचिकर प्रतीत होना स्वाभाविक ही था। फिर भी उसके विचारों में जो कच्चापन था वह इन एक-दो मामूली घटनाओं के हो जाने से दूर हो गया। उसके विचारों में दृढ़ता आ गई।

एक दिन सवेरे जब वह अपनी चाल की गैलरी में खड़ी रास्ते पर आने जानेवाले लोगों और सवारियों को देख रही थी तो उसी समय उसने एक फेरीवाले को जोर से चिल्लाते हुए सुना 'पचास रुपए की पुस्तकें पाँच रुपयों में।' गजराबाई ने उसे गाने पढ़ने और चिट्ठी लिखने लायक़ उसे पढ़ा-लिखा दिया था। इसी से जाई को पढ़ने लिखने से प्रेम हो गया था। परन्तु नागेशी जैसे छोटे गाँव में उसे पढ़ने का शौक, जब कभी मिल जानेवाली 'गुलबकावली' 'सिंहासन बत्तीसी' जैसी छोटी-मोटी किताबों से ही पूरा कर लेना पड़ता था। इसी कारण इस फेरीवाले की आवाज़ सुन तथा विशेषकर पचास रुपयों की किताबें पाँच रुपयों में मिलती देख उसे उन्हें खरीद लेने की इच्छा हुई और इसी लिए उसने फेरीवाले को ऊपर बुला लिया। पहले तो गजराबाई की, इतनी बड़ी रकम पुस्तकों पर खर्च करने की इच्छा न हुई परन्तु पुस्तकों पर खर्च करने की इच्छा न हुई परन्तु पुस्तकों के विषय में गजराबाई की लच्छेदार बातें सुनकर, उनके लिए जाई की ज़िद और बम्बई में फैशनेबुल औरतों की पुस्तकें पढ़ते देख आखिर पुस्तकें खरीदने की आज्ञा दे दी और फेरीवाले के पैसे चुकते कर दिये। शायद ये सुन्दर बाइंडिङ्ग और साफ़ छपाईवाली तीस-बत्तीस मौलिक किताबें किसी अच्छे घर में आश्रय पाकर उस घर पर आईं, किसी आपत्ति के कारण गुदड़ी में पहुँची। उनमें से बहुत से मराठी के नाटक और उपन्यास थे जो प्रसिद्ध लेखकों के लिखे हुए थे।

बाक़ी सारी किताबें महान् स्त्री-पुरुषों की जीवनियाँ और उपदेश थे। इतनी सारी किताबें मिलते ही जाई को बहुत आनन्द हुआ। अब सुबह से शाम तक एक के बाद दूसरी पुस्तक समाप्त करने के सिवा और कोई काम उसे नहीं था। संसार में ऐसी अच्छी पुस्तकें हो सकती हैं, इसकी उसे कल्पना भी नहीं थी। सारा दिन वह पढ़ती रहती और रात को जब बिस्तर पर लेट जाती तो किसी नाटक या उपन्यास के किसी अच्छे नायक और नायिका के कृत्यों का स्मरण करती या किसी जीवनचरित्र में से स्फूर्तिदायक प्रसंग फिर फिर स्मरण कर उससे प्राप्त एक मधुर अस्वस्थता का आनन्द अनुभव करते हुए वह घंटों बिता देती। यह उसका नित्य का कार्य-क्रम था। ख़ासकर इस पुस्तक में वर्णन किये हुए काल्पनिक या सच्चे आदर्श व्यक्तियों की वैवाहिक स्थिति के दिये हुए हृदयंगम चित्र और पवित्र वातावरण का परिणाम उसके सरल हृदय पर होने लगा और वह इस हद तक पहुँचने लगा कि उसकी अच्छी भावनाओं और विचार-शक्ति का विकास होने लगा। उसे अपने जीवन का एक नया ध्येय दृष्टिगोचर होने लगा। और अब पहिले की तरह वह उसे अपनी मा और मासी की बातें चुपचाप न सुन सकती। पहिले तो वह उनके विचारों के विरुद्ध नापसंदगी ज़ाहिर करने लगी, फिर उनके प्रति घृणा और आखिर में वह उनका खुल्लमखुल्ला विरोध करने लगी। गजराबाई ने जिसे स्वप्न में भी न सोचा था, ऐसा विचित्र मानसिक परिवर्तन अपनी लड़की में होता देख उस पर चिन्ता सवार हो गई। और उसकी यह मूर्खता अधिक बढ़ने के पूर्व ही उसके पेशे में उसे जल्दी फँसाने के लिए उस ओर आकर्षित करना चाहिए। यह निश्चय कर गजराबाई ने रघूदादा को इस विषय में शीघ्रता करने के लिए कहा।

६

उस समय सवेरे के दस बज चुके थे। रघूदादा बाहर से लौट आकर कपड़े उतार रहा था। कपड़े उतारते-उतारते आज उसने अपनी पसन्द का गाना 'स्वकुल तारक सुता' कुछ ऊँचे स्वर में गाना शुरू किया। गजराबाई ने जब देखा कि वह आज रोज से कुछ जल्दी आ गया है तथा उसके स्वर में

प्रसन्नता है तो वह समझ गई कि आज कुछ विशेष बात है। उसे जानने के लिए वह जल्दी बाहर आई। रघूदादा भी इसी बात की बाट जोह रहा था। उसे देखते ही वह बोल उठा 'ओफ़! आख़िरकार तुझसे छुटकारा मिला। मौक़ा पाकर आज मैं सब मामला ठीक कर आया हूँ। अब उसमें सफलता मिलना न मिलना तेरे तक़दीर की बात है।"

'यानी ऐसी कौन-सी बहादुरी तूने कर डाली ? बता तो सही ?'

अरी हमेशा की तरह आज भी मैं उनके बँगले के आसपास चक्कर लगा रहा था। हज़रत मोटर में घूमकर लौट रहे थे। उन्हें देखते ही मैंने यह दिखाने का प्रयत्न किया, मानो मैं उनके बँगले ही में जा रहा था। मोटर से उतरकर उन्होंने कहा 'शाम को छः बजे ठाकुरद्वार पर कालेराम के मन्दिर में कीर्तन सुनने जाना है, समय पर मोटर ले आना।' यह कह फाटक लाँघकर वे अन्दर जाने लगे। मैंने उन्हें अभिवादन किया। वे ठहरकर पूछने लगे, 'कौन हो ? क्या काम है ?' इत्यादि। मुझे तो यही चाहिए था। बड़ी नम्रता से मैंने उनके पिता अन्ना साहब का नाम लेकर कहा कि मैं उनसे मिलने आया हूँ। यह सुन उन्होंने खेदयुक्त स्वर में कहा 'मेरे पिता तो छः महीने पूर्व ही गुज़र गये।' उसे सुनते ही मैंने बड़ा दुःख दिखाया। उसे देख वे चक्कर में आ गये। उन्होंने कहा 'चलिए अन्दर आइए। आप मेरे पिता के पुराने मित्रों में से दिखाई देते हैं।' मैं अन्दर गया। फिर आगे क्या हुआ, क्या यह भी तुझे बताने की ज़रूरत है ? अन्ना साहब की और अपनी मित्रता की मैंने ऐसी लच्छेदार बातें सुनाईं कि बस रंग जम गया। बाद में चाय नाश्ता समाप्त होने पर मैं उनसे बिदा ले वापस घर आया।

'तेरा अब आगे क्या करने का इरादा है ?' गजराबाई ने अधीर हो पूछा।

'शाम को जाई को ले मन्दिर में कीर्तन सुनने जाऊँगा।'

'केवल इससे क्या होगा ?'

'क्या होगा ! जाई के सदा निकट रहने के कारण तू नहीं जानती कि उसके सौन्दर्य में क्या जादू है। वह एक बार इसे देख भर ले फिर वह मेरे क़ाबू में आये बग़ैर नहीं रह सकता।'

यह सुन गजराबाई ख़ुशी और अभिमान से फूली न समाई। तनिक सोच-कर उसने कहा 'लेकिन क्या सच ही वे इतने मालदार हैं।'

अरे ! ये भी कोई पूछनेवाली बात है। एक महीने तक मैंने जो उनके विषय में पूछ-ताछ की, क्या वह सब व्यर्थ थी ? इसका पिता सचमुच ही बहुत बुद्धिमान् था। उसने पन्द्रह-बीस लाख रुपयों की जागीर कमा रखी है। उनका यह एकलौता बेटा है। दावनगिरी, हुबली, बेलगाँव, पूना, बम्बई इन पाँच स्थानों में इनकी आढ़तें चल रही हैं। अब केवल एक छोटा-सा रोटा—इसका चचा—रास्ते में है। बूढ़ा बड़ा खूसट और खुर्राट है। रियासत का इन्तज़ाम वह स्वयं बड़ी होशियारी से करता है। भतीजे को इस विषय में ज़रा-सा भी अधिकार नहीं है। परन्तु बूढ़ा अब कै दिन का मेहमान है। जिस दिन उसकी चिता जली कि उसी दिन से हम हैं और हमारे जजमान हैं, निपट लेंगे। परन्तु एक बात ध्यान में रहे, जाई को इस बात की तनिक भी हवा न लगने पाये, नहीं तो वह भड़क जायेगी। उसे केवल इतना ही बताना कि राममन्दिर में कीर्तन को जाना है।'

पास के कमरे में जाई 'हमारे जीवन के कुछ संस्मरण नामक' पुस्तक पढ़ने में लगी थी। उसे पता ही न था कि उसकी मा और मामा उसके विषय में क्या षड्यंत्र कर रहे हैं।

शाम को एक-दो घंटे खर्च कर गजराबाई ने जाई की चित्ताकर्षक चोटी गूँथी और अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषणों से उसे सजाया। आज के इस शृङ्गार का कारण जाई को पता नहीं था; इसी लिए उसे थोड़ा आश्चर्य हुआ। परन्तु कीर्तन सुनने जाने की ख़ुशी में वह सब कुछ भूल गई और ठीक साढ़े पाँच बजे रघूदादा उसे लेकर मन्दिर जाने के लिए चल पड़ा।

पन्द्रह या बीस मिनट में ही दोनों मन्दिर में जा पहुँचे। उस दिन के कीर्तनकार बहुत प्रसिद्ध और जनप्रिय कीर्तनकार थे। इसी कारण श्रोताओं की काफ़ी भीड़ होने की सम्भावना थी, परन्तु कीर्तन प्रारम्भ होने में देर होने से सभा-मण्डप खाली पड़ा था। रघूदादा ने जाई को ऐसी जगह बैठाया जहाँ मन्दिर में कहीं भी बैठा व्यक्ति उसे अच्छी तरह देख सके।

थोड़ी ही देर में भीड़ होने लगी और ठीक समय पर कीर्तन प्रारम्भ हो गया। स्कन्दपुराण के आधार पर महानन्दा की कथा ही कीर्तन का विषय था। समाज-सुधार के हेतु कीर्तन का उपयोग करनेवाले महाराष्ट्र के नये कीर्तनकारों में उनका बड़ा मान था। पुराने पौराणिक और ऐतिहासिक कथाओं के आधार पर वे अपने सामाजिक और राजनैतिक विचारों की छाप लोगों के हृदयों पर जमा देने की कला उन्हें अच्छी आती थी। आज का रघूदादा की उसे यहाँ लाने में जो कलुषित इच्छा थी, वह जाई के लिए शुभ-दायक ही हुई। बचपन से ही वह नागेश के मन्दिर में होनेवाले कीर्तनों को सुना करती थी। परन्तु वे सब स्वार्थ-सिद्धि के लिए ही हुआ करते थे। निश्चित तिथि को कोई मिट्टी का माधो आकर भक्तिरस के आड़ में शृंगार रस का वर्णन कर, थोड़ी देर श्रोताओं को हँसा अन्त में हरिनाम का कीर्तन कर अपनी चढ़ोतरी ले खसक जाता। यह थी वहाँ की प्रथा। इसी कारण जैसे-जैसे वह इन कीर्तनकार के मर्मस्पर्शी शब्द सुनती जाती थी, वैसे ही वैसे बाह्य जगत् को भूलकर उन विचारों में तल्लीन हो जाती थी। इधर महीने-डेढ़ महीने से जो परिवर्तन उसमें हो रहा था, वह ऐसे गूढ़ उपदेशों का प्यासा ही था। जैसे प्यासी पृथ्वी जलधारा का एक बूँद भी बाहर नहीं जाने देती, उसी प्रकार कीर्तनकार के मुख से निकले हुए प्रत्येक अक्षर को जाई जैसे हृदय में संचित कर रही थी।

इस समय रघूदादा अस्वस्थ हो रहा था। मिनिट-मिनिट बाद मन्दिर के बाहर रास्ते की ओर देखता जाता और फिर मन्दिर के बाहर चक्कर काटने लगता। कीर्तन प्रारम्भ होकर एक घण्टा बीत चुका था, फिर भी उसकी आशा पूरी नहीं हो रही थी। वह यह सोचकर निराश हो रहा था कि उसका रचा षड्यन्त्र व्यर्थ ही होनेवाला है। पर ठीक साढ़े सात बजे मन्दिर के सामने एक मोटर आकर रुकी। उसे देख रघूदादा का मुख ख़ुशी से खिल उठा। वह मोटर और उसमें बैठे सज्जन को देख उसने उन्हें पहिचान लिया। मोटर से उतरकर जब रामराव अन्दर घुसे तो दोनों ने एक दूसरे को देखा। तुरन्त ही बड़े अदब से रघूदादा ने उन्हे प्रणाम किया।

'आपको भी कथा-कीर्तनों का शौक है शायद।' प्रणाम का उत्तर देते हुए तथा सभ्यता के नाते कुछ बोलना आवश्यक समझकर रामराव ने यह सब कहा।

परन्तु तुरन्त ही अपने आपको स्पष्ट वक्ता जाहिर करने के लिए कहा 'वास्तव में मुझे तो इन सब बातों में विशेष रुचि नहीं है; फिर भी मुझे लाचार हो आना ही पड़ा 'गोवा से भाँजा चार दिन यहाँ रहने के लिए आई है। कीर्तन को ले चलने का हठ ले बैठी।' यह कहते-कहते इस होशियारी से जाई की ओर उँगली दिखाई कि सहज ही रामराव ने उसे देख लिया।

इस बात का रामराव पर जैसा रघूदादा चाहता था, वैसा ही परिणाम हुआ। जाई की ओर लगी उनकी टकटकी बड़ी देर तक वहीं गड़ी रही। एक तो जाई पहिले ही सुन्दर और फिर उसमें आज के शृंगार ने और भी उसे आकर्षक बना दिया था। कीर्तनकार के कीर्तन में तन्मय हो जाने के कारण उसके मुख पर एक अपरूप सौन्दर्य की छटा फैल गई थी। आज तक कभी संयम से न रहनेवाले रामराव की सौन्दर्य-पिपासा बिजली की रोशनी में अधिक उभारदार दिखाई देनेवाले इस यौवन को देख, कितनी तीव्र हो गई होगी, इसका अन्दाज नहीं लगाया जा सकता। रामराव की दृष्टि की उन्माद-युक्त भूख तोड़ने के लिए रघूदादा के दो-चार ही क्षण काफ़ी थे। मानो यह शुभ शकुन यह सूचित कर रहा है कि जो षड्यन्त्र उसने रचा है वह अवश्य सफल होगा। और इसका उसे विश्वास भी हो गया। थोड़ी देर में रामराव होश में सभा-मण्डप में अच्छी जगह जा बैठे। अब भला रघूदादा दूर थोड़े ही रह सकता था। वह भी उनके पास जा बैठा। बीच-बीच में धीरे-धीरे वे बातें भी करते जाते थे। आखिर ऐसा ज्ञात होने लगा कि दोनों की घनिष्ठता बढ़ती ही जा रही है।

घंटे डेढ़ घंटे में कीर्तन समाप्त हो गया। अंत में पण्डितजी ने स्फूर्ति-दायक शब्दों में करुण-रस का ऐसा समा बाँधा कि दूसरे श्रोताओं की तरह जाई की भी आँखों में आँसू आ गये। सब लोग अपना-अपनी जगह से उठ बाहर जाने की जल्दी करने लगे, परन्तु जाई न जाने कितनी देर रामचन्द्र

की मूर्ति की ओर ध्यान लगाये विचार-सागर में डूबी रही। आख़िर रघुदादा की पुकार सुनकर वह होश में आई।

जाई की आँसू से डबडबाई आँखों की ओर उसकी नज़र पड़ते ही वह उपहास कर बोला 'तू कितनी भोली है जाई ! अरी पुराणों की बातों पर क्या कोई इतनी श्रद्धा रखता है ? यह तो केवल मन बहलाने के लिए सुना जाता है। इसे तो एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देना चाहिए। अच्छा अब आँखें पोंछ और चल।'

वह यह बात रघुदादा ने देख ली है, यह सोचते ही जाई शर्मा गई। वह चट से आँखें पोंछ उसके साथ हो ली। जब तक रघुदादा जाई को लेकर बाहर न आया, रामराव अपनी मोटर के पास खड़े रहे। यह बात रघुदादा से भी छिपी न रही। जरा पास जाकर उसने रामराव से बिदा लेने के लिए एक बार फिर प्रणाम किया। परन्तु उत्तर में प्रणाम करने के बजाय रामराव ने कहा 'कहाँ रहते हैं ? खेतबाड़ी में ; तो यदि आप को कुछ असुविधा न हो तो चलिए मेरी मोटर में ; मुझे भी उसी ओर जाना है।' रघुदादा रामराव के इस अनपेक्षित मेहरबानी से कुछ विस्मित हो असमंजस में पड़ने का नाटक-कर आख़िर कृतज्ञता-पूर्वक उसने रामराव की बात मान ली और जाई के साथ वह उनके पास जा बैठा।

इस नई बात से जाई थोड़ी देर चकित-सी रह गई। परन्तु मोटर चलते ही महानंदा और उस पर प्रकट किये, कीर्तनकार के विचारों में वह फिर तल्लीन हो गई। रघुदादा और रामराव की बातें चल रही थीं, परन्तु टूटे-टूटे उनकी बातों से यह पता लग रहा था कि उनकी आँखों की तरह ही उनका दिल भी जाई की ओर खिंच रहा है। आख़िर खेतबाड़ी पर आकर मोटर रुकी। रघुदादा जाई के साथ नीचे उतरा और लम्बे-चौड़े शब्दों में रामराव का एहसान मान उसने उन्हें बिदा किया।

७

अब जाई के जीवन का महत्त्व-पूर्ण क्षण आ गया था। ठाकुरद्वारे में जब से उसने कीर्तन सुना था, उसके जीवन में परिवर्तन हो गया था। पहिले वह

बहुत-सा समय पढ़ने में बिताया करती थी, परन्तु अब पढ़ना कम कर वह अस्वस्थ चित्त से चिन्तन करती रहती। इन दिनों उसने यह निश्चय कर लिया था कि कुछ भी हो ; पर वह वेश्या-वृत्ति स्वीकार नहीं करेगी। परन्तु इस ध्येय को सिद्ध करने के लिए मार्ग में आनेवाले रोड़ों को किस तरह हटाये यह बड़ी भारी समस्या उसके सामने थी।

उसकी जात में पढ़-लिखकर समाज में ऊँचा स्थान प्राप्त करनेवाले लोग बहुत कम थे। और जो कुछ थे भी, उन्हें अपनी जाति बताते लज्जा प्रतीत होती है, इसी लिए अपनी जाति छिपाकर वे दूसरी जातियों में मिलने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार के सच्चे उदाहरण उसकी मा उसे सुनाया करती है। ऐसी दशा में कौन-सा शिक्षित और सुशील नवजवान उससे विवाह करने के लिए तैयार होगा और यदि वह अपनी बिरादरी के अशिक्षित और बैठे-बैठे खानेवाले किसी नौजवान से शादी कर ले तो उसका जीवन कहाँ तक सुखी हो सकेगा? तो फिर क्या वह आजन्म अविवाहित ही रहे?...जीवित रहने के लिए यदि वह अविवाहित रह केवल नाचने-गाने का पेशा करे तो वेश्या होने के कारण समाज उसे छलिया समझेगा। यदि इस सब बातों को छोड़ दिया जाय, तो पुराने विचारोंवाली माँ, जिसने उस पर बड़ी-बड़ी महत्त्वाकांक्षाएँ पाल रखी हैं, को कैसे इन सब बातों को छोड़ देने के लिए राजी किया जाय? इसी प्रकार की अनेक गहन समस्याएँ पिछले सात-आठ दिनों से उसके हृदय में एक तूफान खड़ा किये हुए थीं। परन्तु उसका कोई समुचित उत्तर उसे नहीं मिल रहा था।

दो-चार दिन पहिले से जो किताब उसने पढ़नी शुरू की थी, उसे समाप्त करने के लिए जब आज वह कमरे में जा बैठी तो पढ़ना एक ओर ही रह गया और वह फिर विचार-सागर में डूब गई। शाम हो गई, फिर भी वह वैसी ही बैठी रही पर उसकी शंका-कुशंकाओं का समाधान न हो सका। इतने में गजराबाई अन्दर आई।

कमरे में अँधेरा और जाई को खिड़की के पास बैठा देख उसने कहा 'ऐसी कौन-सी समस्या तेरे सामने है? बत्ती जलाने का भी होश नहीं।' यह

कह उसने बिजली का बटन दबाया। सारे कमरे में उजाला फैल गया। बाद में वह जाई के पास आ बैठी और बड़े स्नेह से बोली 'बेटी, जब से तू बम्बई में आई है, तुझ पर यह कौन-सा पागलपन सवार हो गया है? बेचारे रघूदादा मेरे-तेरे सुख के लिए व्याकुल हो रहे हैं, परन्तु तुझे उसकी जरा-सी भी परवाह नहीं। तू तो अपने ही राग में मस्त रहती है। जब तू अपने गाँव में थी, तुझे गाने-बजाने के सिवा और कुछ नहीं भाता था। पर जब से तू यहाँ आई है, तब से मैं देखती हूँ तेरे हाथ में पुस्तक, दिमाग़ में जिल्द और विचार। बस इन्हीं में तू मग्न रहती है। वह दिलरुबा और सितार संदूक में ही बन्द पड़े हैं, उन्हें तूने कसम खाने के लिए हाथ भी नहीं लगाया; गाने के लिए भी कभी यहाँ आकर तूने मुँह खोला हो, ऐसा मुझे याद नहीं, अरी यह सब विद्या अभ्यास से ही बढ़ती है और अभ्यास न करने से भूल जाती है। तुझे मालूम ही है कि जो कुछ थोड़ा-सा तूने सीखा है, उसके लिए जो कुछ मेरी चीजें मेरे पास थीं, उन्हें बेच-बेचकर मैंने मास्टरों को वेतन दिया है। जो कुछ विद्या तूने प्राप्त की है, क्या उसे इस प्रकार व्यर्थ करना योग्य है? अरी इसी पर तो हमारी जीविका निर्भर करती है। चल उठा अपना दिलरुबा। आज से घंटे दो घंटे इसमें लगाया कर। आज रघूदादा के वे मित्र रामराव भी बाहर आकर बैठे हैं। उन्हें गाने-बजाने का शौक़ है। वे स्वयं भी बहुत कुछ जानते हैं। चलो बाहर थोड़ी देर दिलरुबा बजाकर सुनाओ और एक-दो अपनी पसंद की दो-एक चीजें सुनाओ।'

इतनी देर तक जाई अपनी मा की सारी बातें शान्त होकर सुन रही थी, परन्तु रामराव का नाम सुनकर वह उबल पड़ी। अत्यन्त तिरस्कार और दृढ़ता से बोली 'मा, तेरी और रघूदादा की सारी चालें मैं समझती हूँ। मैं उन्हें खुश करने के लिए न तो गाऊँगी ही और न कुछ बजाऊँगी ही।'

गजराबाई ने फिर दलीलें देना शुरू कीं 'बस चढ़ गया तेरा पारा। इतने दिनों मुझे यही चिन्ता लगी रहती है कि मेरे बाद तेरा क्या होगा? अरी! ईश्वर ने जो गुण और विद्या दी है, यदि वह थोड़ी देर दूसरों के दिल बहलाने के काम न आई तो किस काम आयेगी। उनके सामने रघूदादा ने इतने

अभिमान से अपनी भाँजी की तारीफ़ उनके सामने की और वे इतने बड़े आदमी होते हुए केवल रघुदादा की मित्रता के कारण हम गरीबों के घर उसे देखने के लिए आये तो क्या अब उनका इस प्रकार अपमान करना उचित होगा ? बोल तो तुझे ये लच्छन क्यों सूझ रहे हैं। हमारी जाति के लिए यह सब अभिमान शोभा नहीं देता। ऐसे तो दर-दर भीख माँगनी पड़ेगी, भीख।'

इस प्रकार अपनी सारी चातुरी ख़र्च कर गजराबाई ने जाई को समझाने की हद कर दी, परन्तु इसमें उसमें तनिक भी सफलता न प्राप्त हुई; आख़िर वह क्रोधित हो बड़बड़ाती हुई अन्दर चली गई।

'क्या किया जाय, आज ही जाई का सर दुखने को था। कुछ बुख़ार भी उसे आया है।' बाहर बैठे रघुदाद को उद्देश कर गजराबाई ने कहा और उसे अन्दर बैठी जाई ने भी सुना।

ठाकुरद्वारे के राम मन्दिर की मुलाकात के बाद रघुदादा और रामराव की घनिष्ठता उतनी जल्दी बढ़ने लगी कि उसे देख किसी को भी आश्चर्य हो सकता था। एक दो दिन का अंतर देकर रामराव की मोटर गोपाल बिल्डिंग के सामने आकर खड़ी हो जाती और हर बार ही किसी ज़रूरी काम का बहाना होता। रघूदादा भी चाय इत्यादि पिलाकर बड़े ठाट से उनकी आव-भगत करता।

'आज की मत पूछ, रामराव से भेंट हो गई; फिर क्या था ले गये जवाहिरवाले की दूकान पर। फलाँ शख़्स के साथ कुछ हज़ार का मामला खटाई में पड़ा था। वह मेरे सामने ही मिट गया। कल नाटक चलने के लिए वे बहुत ही गले पड़ रहे हैं, क्या किया जाय, जाना ही पड़ेगा।' इत्यादि बातें रघूदादा जब भी बाहर से घूमकर आता तो इतनी ज़ोर से अपनी बहन को सुनाता कि वे जाई के कान तक भी पहुँचे जाँय।

पहिले पहिल तो उसका यह ख़याल था कि रामराव के विषय की बातें सुनकर जाई कुछ उत्सुकता दिखायेगी, परन्तु यह सब तो दूर की बातें थीं। बात यहाँ तक थी कि रघुदादा से मिलने जब रामराव घर आते, रघुदादा चाय देने या किसी और बहाने से उनके सामने जाई को भेजने का प्रयत्न करता,

परन्तु वह उसे ठुकरा देती। यह बात गजराबाई और रघुदादा को ज्ञात होते ही वह उसको इस बात के लिए उसे बुरा भला कहते और कहते कि अपने व्यवसाय के अनुसार उसका यह व्यवहार उचित नहीं है। कभी-कभी वह उसे हरे-हरे बाग दिखाकर कहते कि यदि रामराव उससे प्रम करने लगेंगे तो वे उसे निहाल कर देंगे। परन्तु जाति के हृदय पर इसका कुछ भी असर न होता। बात यहीं तक नहीं रुकी, वे जो मार्ग उसे सुझा रहे थे, उसके विषय में घृ[illegible] और अपने सदाचार से तिल भर भी न डिगने का अपना इरादा एक-दो [illegible] उसने इतने जोरदार शब्दों में व्यक्त किया, मानों उसका सिर कोई भूत सवार हो गया है। और गजराबाई तथा रघुदादा की सच यही धारणा हो चुकी थी।

पिछले एक-दो महीने से जाई की विचारधारा किसी दूसरी ओर बह रही है, यह बात गजराबाई और रघुदादा जानते थे। उन्हें डर था कि वह कहीं बहक न जाय। परन्तु उन्हें यह भी विश्वास था कि बचपन में दिल में समाई हुई विचित्र कल्पनाएँ हमेशा नहीं टिकतीं और योग्य प्रयत्न करने पर जाई को शीघ्र ही रास्ते पर लाया जा सकता है। लेकिन आज जब जाई ने रामराव के गाना-बजाने को सुनने की इच्छा पूरी न की तो दोनों ने उसका यह हठ देख सोचा कि उन्हें इस हठ को दूर करने के लिए कोई भीषण उपाय सोचना पड़ेगा।

८

दूसरे दिन से गजराबाई ने जाई से न बोलना, बात-बात में उससे बिगड़ना, गुस्सा होना इत्यादि बातें शुरू कर दीं। परन्तु उसका असर न होता देख उसने इससे भी अधिक भीषण बातें जैसे अश्रुमोचन, भूखा रहना इत्यादि शुरू कीं। इन बातों को देखकर जाई का कोमल अन्तःकरण अपनी मा के लिए दुखी होने लगा। बचपन में गजराबाई ने उसे इतने लाड़-प्यार से पाला था, फिर भला अब उसकी बुढ़ौती में वह उसके दुख का कारण बने, यह बात जाई के कृतज्ञ और स्नेही मन को असह्य वेदना देने लगा। फिर भी अपनी मा के समाधान के लिए अपना जीवन निष्कलंक रखने का विचार

त्याग देने की भावना उसके दिल में क्षण भर के लिए भी नहीं आई। अपने निश्चय को छोड़ किसी ने उसे गजराबाई को सुखी रखने का कितना भी कठिन उपाय सुझाया होता तो भी वह उसे पूरा करने में न हिचकिचाती पर सब होते हुए भी सामने खड़ी मुसीबत से छुटकारा पाने का उपाय उसकी समझ में न आ रहा था।

आखिर गजराबाई के क्रोध ने भयंकर रूप धारण किया। पूरे दो दिन तक न तो उसने अन्न का एक दाना ही खाया और न एक बूँद पानी पिया। रघुदादा मर्द होकर भी उपवास, शोक, अश्रुपात इत्यादि से हुई अपनी बहन की दैन्यावस्था देख बेचारा फूट-फूटकर रो रहा था। एक कप चाय या एक गिलास दूध पी लेने के लिए बार-बार वह उसकी मिन्नतें कर रहा था, परन्तु गजराबाई पर उन बातों का कोई भी असर न हुआ।

'अरे रघुदादा, मेरे लिए तू क्यों अपने आप को कष्ट दे रहा है? सचमुच ईश्वर की कसम खाकर कहती हूँ कि मुझे जीने की जरा भी इच्छा नहीं है। जन्म-भर वक्त-बे-वक्त तंगी उठा जिसको मैंने लाड़-प्यार से पाल-पोसकर बड़ा किया, मेरे कोख से जन्मी, उसी लड़की का मुझ पर इतना भी स्नेह नहीं तो फिर अब मैं किस सुख के लिए जीवित रहूँ। श्रीनागेश से अब मेरी यही प्रार्थना है कि वह अब मुझे जल्दी ही उठा ले। अब ये हृदय-वेदनाएँ मुझ से नहीं सही जातीं।' इस प्रकार के इने-गिने निश्चित हृदय-द्रावक उत्तर वह दिया करती और बार-बार ईश्वर और मृत्यु की आराधना करती जिसे सुन रघुदादा भी कुछ जवाब देता। जैसे 'नहीं बहिन! ऐसे बुरे शब्द मुँह से न निकालो। क्या तुम अपनी लड़की की तरह सभी लोगों को पाषाण-हृदय समझती हो? तेरे ये शब्द मेरा कलेजा चीर डालते हैं। लड़की को समझदार हुई देख तेरा बुढ़ापा आराम से कटेगा, इसी लिए मैं तुझे यहाँ ले आया। परन्तु तुझे क्यों ऐसी कुबुद्धि सूझी? ऐसा सब करने से अगर तुझे कुछ हो गया तो मैं गाँव के लोगों को क्या मुँह दिखाऊँगा।' ऐसी ही बातों का क्रम दिन भर चलता रहता।

यह सब देख जाई के कोमल मन की बुरी दशा हुई। उसकी मा को अब

जरूर कुछ न कुछ हो जायगा और उसकी जिम्मेदारी उसके हठ पर होगी, यह सोचकर उसका हृदय टुकड़े-टुकड़े हो रहा था। उसने कई बार गजराबाई से हाथ जोड़, पैर पड़, इस हठ को छोड़ देने के लिए मिन्नतें कीं परन्तु गजराबाई तो उसकी बातों की ओर ध्यान देने या उससे एक बात भी करने के लिए तैयार नहीं थी। रघुदादा का बहिन के प्रति इतना प्रेम बढ़ गया था कि कृतघ्न लड़की के मुँह देखने से बहिन को अधिक क्लेश होने के डर से वह जाई को बुरा-भला कहता और उसे उसके पास भी फटकने न देता। आखिर उसका पास रहना भी गजराबाई के लिए कष्टदायक होगा, इस बहाने से जाई को उस कोठरी से बाहर निकल जाने को कहा गया। बाहर कभी-कभी सुनाई देनेवाला मा का कराहना, विह्वल होना और रघुदादा की बहिन से की गई करुणा-प्रार्थनाएँ सुनकर जाई बेचारी रोने बैठने के सिवा और कर ही क्या सकती थी। बेचारी सीधी और भोली लड़की यह नहीं जानती थी कि संसार अपने स्वार्थ के लिए नीचता की किस हद तक पहुँच सकता है। मा के इस दुख को देखकर उसकी वेदना और अस्वस्थता दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही थी। इधर उससे छिपाकर कभी-कभी गजराबाई दूध की कटोरियाँ गट कर जाती। दुःख से ज़ोर-ज़ोर से फूट-फूटकर रोनेवाले रघुदादा के मुख पर कभी-कभी कुटिल हँसी दिखाई देती। और शिथिल हो निश्चेष्ट पड़ी गजराबाई और शोकाकुल रघुदादा के बीच कभी-कभी काना-फूसी हो जाती है, यदि यह बात कोई जाई से कहता तो वह शायद इस बात पर कभी विश्वास न करती।

उस दिन गजराबाई, रघुदादा और जाई ने सारा दिन इसी प्रकार बिताया। रात को आठ बजे 'दीदी' इस प्रकार ज़ोर से निकली हुई रघुदादा की हृदय-द्रावक पुकार जाई को सुनाई दी। उसे सुनकर वह घबरा उठी और दौड़ती हुई अन्दर गई। परन्तु वहाँ की हालत देख वह एकदम नीचे बैठ गई। अत्यन्त दुख के कारण उसकी आँखों से अश्रुधारा बह निकली।

गजराबाई मूच्छित हो ख़ामोश पड़ी हुई थी; उसकी आँखें पथरा गई

थीं ; घिग्घी बँध गई थी, शरीर अस्तव्यस्त पृथ्वी पर पड़ा था। उसे होश में लाने के लिए दुख से हिचकियाँ लेते तथा मुँह से श्रीनागेश की प्रार्थना करते हुए रघुदादा, बहिन के सिर पर पानी डालना, प्याज सुघाना इत्यादि उपाय कर उसे होश में लाने का प्रयत्न कर रहा था।

जाई पास आकर दहाड़ मार 'मा ! मा !' कह रोने लगी। परन्तु रघुदादा ने क्रोध से चिल्लाते हुए उसे एक ओर ढकेलकर कहा 'खुद अपनी जन्म देनेवाली मा को मृत्यु के जबड़े में ढकेलकर अब यह ममता का ढोंग क्यों दिखला रही है।'

गजराबाई को होश में लाने के सारे प्रयत्न विफल हुए देख निराशा से उसने कोट-टोपी पहिनी और यह कहता हुआ जल्दी से बाहर निकल गया कि 'हे ईश्वर ! डाक्टर इस समय घर मिल जाय।'

उसके चले जाने के बाद जाई ने भी रघुदादा के किये हुए सारे उपाय दोहराये परन्तु सब व्यर्थ। अब वह बेचारी अपनी मा से लिपटकर फूट-फूटकर रोने लगी।

दस-पाँच मिनट में ही रघुदादा डाक्टर को ले आया। डाक्टर ने बड़ी सावधानी से गजराबाई को देखा। छाती देखते समय तिल्ली की जगह उसने स्टेथिसकोप लगाकर देखा। उसके स्टेथिसकोप की रबर में जगह-जगह छेद हो रहे थे। कहने का तात्पर्य यह कि रोगी को देखने के उसके तरीक़े ऐसे थे जो डाक्टर लोग कभी काम में नहीं लाते।

आखिर बड़ी देर तक देखने के बाद उसने चिन्तायुक्त मुद्रा से अपने विचार प्रकट किये।

'इस स्त्री के दिल पर सख्त चोट पहुँची है, इस कारण इसकी ऐसी दशा हो गई है। ठीक तरह दवा करने से यह थोड़ी ही देर में होश में आ जायगी। इसे फिर यदि फिट आया तो मैं कुछ इलाज नहीं कर सकूँगा।' यह कह डाक्टर ने इलाज शुरू किया और उसे आध-पौन घंटे में सफलता मिल गई। गजराबाई धीरे-धीरे होश में आकर हिलने लगी। यह देख मानों रघुदादा की जान में जान आई। बड़ी प्रसन्नता से उसने पास जाकर अपनी

बहिन को आवाज़ दी और उसने भी क्षीण स्वर में 'हां' कह उत्तर दिया।

बाद में डाक्टर रघुदादा को बता गये कि इसकी इस कमजोरी का कारण भूख-हड़ताल है और इसी लिए गजराबाई को जल्दी से जल्दी खाना खाना चाहिए और यदि ऐसा नहीं किया गया तो बाद में फिर बेहोशी आयेगी और उसका बुरा परिणाम होगा।

डाक्टर के चले जाने पर रघुदादा ने बार-बार गजराबाई की मिन्नतें कीं परन्तु उसका उस पर कुछ भी असर न हुआ। वह कभी-कभी कोई बात कह देती जिसे सुनकर जाई का दिल टूट जाता। बार-बार वह अपना यही दृढ़ निश्चय प्रकट करती कि चाहे जो हो, परन्तु वह अन्न न ग्रहण करेगी। थोड़ी देर में उसके फिर बेहोश होने के आसार दिखाई देने लगे। रघुदादा ने इस ज़ोर से रोना शुरू किया मानो उस पर आफ़त का पहाड़ टूट पड़ा हो। वह रोता हुआ जाई के पास गया और उसके पैरों पर सिर रखकर बोला 'मैं तेरे पैरों पड़ भीख माँगता हूँ जाई! अब भी तू अपनी निर्दयता छोड़ दे! दीदी फिर बेहोश हो रही है! यदि अबकी वह बेहोश हो गई तो समझ लेना सब खतम हो जायगा। फिर जिन्दगी भर रोते रहने से भी तेरी मा तुझे न मिलेगी। देख अब क्षण भर भी देर करना बड़ी भारी मूर्खता है। उसके कहने के अनुसार यदि तू अपना चाल-चलन रखेगी तो उसमें तेरा अकल्याण न होगा। अब भी तो ज़िद छोड़ दे। उसे जाकर सान्त्वना दे भोजन करने को कह। देख उसका जीना या मरना अब तेरे हाथ है।'

पिछले दो महीनों में इन लोगों के लगातार प्रयत्न करते रहने पर भी न डिगनेवाला उसका निश्चय, गजराबाई की मूर्च्छा, उस पर डाक्टर के विचार और इतने पर भी गजराबाई की अन्न न खाने की प्रतिज्ञा देख पिछले दो घंटे से माता के प्रेम के कारण, डगमगाने लगा था। और अब फिर मूर्छा आने की संभावना तथा उसके विषय में कहे गये रघुदादा के शब्दों ने उसके उस दृढ़ संकल्प को दबा दिया। रघुदादा ने अपने शब्द पूरे भी नहीं किये थे कि वह अपनी मा से जा लिपटी।

'मा! मा! बता मैं क्या करूँ जिस से तू संतुष्ट होगी। अब मैं कभी तेरी

आज्ञा न टालूँगी। अब गुस्सा छोड़ दे। यदि तू इस तरह मुझे छोड़ जायगी तो फिर मेरा इस संसार में है ही कौन ?' भावुकता के आवेश में ये दीनता के शब्द जाई के मुंह से निकल गये।

'दीदी ! जाई क्या कह रही है उसे सुन। कुछ भी हो, आखिर वह तेरी लड़की है। तुझ पर उसकी ममता नहीं, यह कैसे हो सकता है। अब से वह तेरी आज्ञा के बाहर कुछ भी न करेगी। और तू भी क्या उनका बुरा चेतेगी ?' यह सब बातें कह रघुदादा ने चापलूसी की।

थोड़ी देर में गजराबाई ने आँखें खोल टूटे-फूटे शब्दों में कहा 'मैं अब तुम लोगों की कुछ ही घंटे की साथी हूँ। परन्तु यदि तुम लोग चाहते हो कि मैं सुख से मरूँ तो रामराव को तुरन्त यहाँ बुला लाओ। मैं मरने के पूर्व यह देखकर मरना चाहती हूँ कि रामराव जाई को स्वीकार कर ले।'

'दीदी, मैं और जाई तेरी आज्ञा के बाहर नहीं हैं। देख मैं अभी रामराव को बुलाने जाता हूँ, लेकिन अपने विषय में ऐसी अभद्र बातें न कहो। ईश्वर की कृपा से अभी तू अपनी लड़की का सुख देखने के लिए बहुत वर्ष जियेगी।' जल्दी-जल्दी कपड़े पहिनते हुए रघुदादा ने ये शब्द कहे और घर से बाहर निकल गया।

रघुदादा के बाहर जाते ही अभागी जाई फूट-फूटकर रोने लगी। थोड़ी ही देर में उस पर कितनी बड़ी मुसीबत आनेवाली है, इसे वह अच्छी तरह जानती थी और उसका विचार आते ही उसके हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो जाते थे। परन्तु अब उसका प्रतिकार करने की शक्ति उसमें नहीं थी।

आधे घंटे में रघुदादा रामराव को लेकर आ पहुँचा।

आज तक दिल में जीवन के जिन पवित्र स्वप्नों को जाई ने पाल रखा था, आज वे सब समाप्त हो गये। वेश्या-वृत्ति के पाप-पंक में उस निष्कलंक और सीधी सरल कुमारी को उस रात जबरदस्ती ढकेला गया। इस प्रकार अपना नीच हेतु सफल होते देख गजराबाई और रघुदादा ने नागेश को शतशः धन्यवाद दिये।

९

मनुष्य स्वभाव ही से आशावादी होता है और जाई भी इस नियम का अपवाद न थी।

'मेरे जीवन का विनाश हो गया। जीवन के विषय में मैंने जो एक उच्च आदर्श अपने हृदय में बना रखा था, उस तक पहुँचने की आशा आज समाप्त हो गई। अब सुख का एक क्षण भी मेरे लिए नहीं है, मुझे तो अब दुख में ही सड़ना है। और मुझे इसी दशा में मृत्यु की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इसके सिवा जीवन में और कोई रास्ता मेरे लिए खुला नहीं है।' ऐसे ही विचारों से उसकी यह दृढ़ धारणा हो गई थी और इसी कारण सारा दिन बैठे-बैठे वह दुख किया करती। परन्तु प्रारम्भिक दुख का वेग जब कुछ कम हो गया तो उसे दूर एक आशा का चमकती प्रकाश दिखाई दिया। धीरे-धीरे वह और भी स्पष्ट दिखाई देने लगा। अब वह सोचने लगी 'मैं पतित हो गई हूँ फिर भी मैं सदाचार का सहारा न छोड़ बहुत हद तक अपने ध्येय का पालन कर सकती हूँ। उसके अनुसार मुझे सुख प्राप्त करना असम्भव न होगा। शुभ विवाह मेरे भाग्य में नहीं बदा है, परन्तु जिस पुरुष को अपना शरीर बेचने के लिए भाग्य ने मुझे विवश किया है उसके चरणों पर अपना हृदय अर्पण कर, उसके प्रति आजन्म पत्नी-धर्म निभा—लोगों की दृष्टि में नहीं अपनी दृष्टि में—अपना जीवनहेतु सफल बनाने का उच्च समाधान और सात्त्विक सुख मुझे मिलेगा।'

थोड़े दिनों में ही उसके ये विचार इतने दृढ़ हो गये कि धीरे-धीरे उसने उन्हें कार्य-रूप में परिणत करना प्रारम्भ किया। एक आदर्श कुलवधू की तरह वह रामराव से मधुर प्रेममय और निष्ठायुक्त बर्ताव करने लगी। रघुदादा गजराबाई और रामराव को इससे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। परन्तु इतने थोड़े ही में संतोषकर जाई ने जो अपने भविष्य का मार्ग निश्चित कर रखा था, उसका पूरी तरह उपभोग न करने देने का विचार रघुदादा और गजराबाई का विचार था।

रामराव के साथ जाई के इस नये परिवर्तन और अन्तर को देखकर, इन

दोनों ने यही सोचा कि उसके दिमाग़ में जो फ़ितूर पैदा हो गया, उसके निकल जाने के ये आसार हैं। उसे वेश्या-वृत्ति करते बहुत दिन हो गये थे; परन्तु इन दोनों ने उसे अब तक उसकी असली कुंजी—धन लूटने की—अभी तक नहीं बताई थी। अब वे पाठ पढ़ाने में कोई हर्ज नहीं है, यह सोच उन्होंने उसे इस ओर बढ़ाने का प्रयत्न करना शुरू किया।

जाई अपने पिछले मनोरथों के नष्ट हो जाने पर उससे उत्पन्न हुए दुखों को भूलने का प्रयत्न कर रही थी। रामराव से सच्चे हृदय से प्रेम कर वह उनके सहवास में सुखी होने का प्रयत्न कर रही थी। परन्तु गजराबाई और रघुदादा ने उसे अब और नई बातों के लिए दुखी करना शुरू किया।

इन दिनों रघुदादा चुप नहीं बैठा था। हर प्रकार की तरकीबें लड़ा उसने रामराव के नौकरों-चाकरों से यह पता लगा लिया कि किस प्रकार से उनसे धन लूटा जा सकता है। रामराव के बूढ़े चचा अपनी गृद्ध-दृष्टि से सतर्क हो बड़ी होशियारी से इस्टेट का सारा काम स्वयं ही देखते थे, इस कारण नगद रुपया रामराव के हाथ लगना मुश्किल था। फिर भी उसकी स्त्री के पास बीस-पचीस हज़ार के जेवर थे, वह बेचारी बहुत सज्जन है। कभी किसी बात में दख़ल नहीं देती। पति के इच्छा करते ही वह समस्त जेवर शरीर पर से उतार देगी। ये सब बातें रघुदादा ने जान लीं।

धीरे-धीरे गजराबाई जाई को यही सबक देने लगी कि रामराव से वे जेवर किस प्रकार लूटे जा सकते हैं और जब-जब जाई इन बातों के समझने में आनाकानी करती गजराबाई उसे डाट-फटकार बताती।

अपनी मा के उपदेश के अनुसार कार्य कर रामराव से जो उसने एक पवित्र सम्बन्ध किया है, उसे प्रेम बेचने का रूप दे यह कल्पना जाई के लिए असह्य थी। एक बार जिस कीचड़ में वह फँस गई थी, उसमें और अधिक अन्दर न फँसने का विचार उसने बहुत दिनों तक निभाया। परन्तु गजराबाई ने अन्त में फिर अपना वही हथियार निकाला। हर रोज़ रोना-रूठना, उपवास इत्यादि पहिले-सी बातें शुरू हो गईं और जाई पर भी इसका वही असर हुआ जो गजराबाई चाहती थी। धीरे-धीरे उसका निश्चय शिथिल हो

चला और अन्त में मा के समाधान के लिए आखिर उसने रामराव से जेवरों की इच्छा प्रकट कर उन्हें एक के बाद दूसरा लेना शुरू किया। आठ-पन्द्रह दिन के बाद एक नया कीमती जेवर घर में आ जाता। ये देख रघुदादा और गजराबाई सौख्य-सागर में तैरने लगे। लेकिन यह सब धन देख जाई को ज़रा भी ख़ुशी नहीं हो रही थी। वह दिन पर दिन वेश्या-वृत्ति के नरक में और अधिक धसती जा रही थी। उसके जीवन की अच्छी आशाएँ ज़रा भी पूरी नहीं हो रही थीं। बल्कि रघुदादा और गजराबाई उसे जिन्दगी भर के लिए इसी नरक में गाड़ देना चाहते थे। इस प्रकार बार-बार उसका हृदय उसे धिक्कार रहा था। इन्हीं कारणों से उसके जीवन का एक भी दिन सुख से नहीं कट रहा था।

इसी प्रकार छै मास समाप्त हो गये। इस बीच पन्द्रह-बीस हज़ार के जेवर गजराबाई के हाथ लगे। परन्तु इतने से भला उसे क्यों संतोष होने लगा था।

एक दिन रघुदादा ने कहा कि रामराव से आज तक जितने जेवर मिले हैं, उन सबसे बहुमूल्य जेवर उनकी स्त्री के पास है। वह एक लड़ी है। जब रामराव के पिता जीवित थे उन्होंने इनकी स्त्री को यह एक लड़ी दी थी जिसमें उसका मंगल सूत्र * पिरोया हुआ था। उसकी लड़ियाँ काँच के काले मोतियों की न होकर सच्चे मोतियों की हीं। उसका एक-एक मोती बड़ा कीमती है। इसकी कीमत सात-आठ हज़ार से कम न होगी।

यह सुनते ही गजराबाई के मुँह में पानी भर आया। दूसरे ही दिन से रामराव से वह हार माँग लेने के लिए गजराबाई ने जाई से रोज़ कहना शुरू किया। पहले तो जाई ने ऐसा करने से साफ़ इन्कार कर दिया। वह अच्छी तरह जानती थी कि मंगलसूत्र स्त्रियाँ कैसे यत्न से रखती हैं और उसे छीन लेने पर स्त्री को अत्यन्त दुःख होगा। इसी से स्त्री को इस प्रकार का मानसिक कष्ट पहुँचाने के लिए वह कभी तैयार नहीं थी। एक-दो सप्ताह तक अपनी

* चने की दाल के बराबर दो सोने की कटोरियाँ-सी बनाकर सुहागिन स्त्रियाँ पहनती हैं। इन कटोरियों के आस-पास काँच के काले मोती पिरोये रहते हैं।

माँ की इच्छा ठुकराने में जैसा साहस उसने दिखाया था, वैसा इससे पूर्व कभी नहीं दिखाया था। परन्तु गजराबाई ने भी उसे रास्ते पर लाने के लिए आत्मघात करने की धमकी दी, और उसका स्वरूप इस बार उसने भयंकर प्रकट किया। उसे देख मातृप्रेम के कारण उत्पन्न होनेवाली दुर्बलता ने उसे फिर गजराबाई के जाल में फँसा दिया।

तीन-चार दिन गजराबाई ने भूख-हड़ताल की। रघूदादा ने उसे देख आफ़त ढा दी। वही डाक्टर ने आकर परीक्षा की और सम्मति दी। उन्हीं पुरानी बातों की पुनरावृत्ति होते ही रघुदादा के कहने पर, जाई ने अपनी मा को मृत्यु के मृत्यु से बचा लेने के लिए उसकी मर्जी के खिलाफ़ कभी न जाने के लिए श्रीनागेश की शपथ लेकर बचन दिया। और इस प्रकार आख़िर गजराबाई को उसने भोजन कराया।

१०

रात को नौ बजे जाई ने अपने कमरे में अकेली ही बैठी हुई थी। उसकी आँखों से अश्रु-प्रवाह जारी था। थोड़ी ही देर पहिले वह कोई बुरा काम कर बैठी थी और अब उसी के दुख के कारण पश्चात्ताप से उसका हृदय जल रहा था। यह बात उसकी शकल से ही मालूम हो रही थी।

आधे घण्टे पूर्व नित्य के नियमानुसार रामराव उसके यहाँ आये थे। उसने उनके पास यह ज़िद की कि मोतियों की लड़ी उसे मिलनी चाहिए और अभी मिलनी चाहिए। इसके पूर्व भी उसने रामराव से कई जेवर माँगे थे, परन्तु इतनी बेमुरव्वती से कभी उसने जिद नहीं की थी। उनके साथ सदा ही सीधा और स्नेहमय बर्ताव करनेवाली जाई में आज यह परिवर्तन देख रामराव को दुख और आश्चर्य हुआ। उन्होंने जाई को समझाया कि वह उनकी स्त्री का खास जेवर उसका सौभाग्यचिन्ह है और उसके स्नेह करने-वाले ससुर का स्मृतिचिन्ह है, इन्हीं दो कारणों से उनकी स्त्री को अत्यन्त प्रिय है; आज तक उसने एक क्षण को भी उसे अपने से अलग नहीं किया; आजकल किस प्रकार वह मृत्युशैय्या पर पड़ी है इत्यादि। उन्होंने जाई से कहा कि वह इन सब बातों पर ध्यान देकर अपना हठ छोड़ दे। परन्तु इतना

समझाने पर भी जाई ने एक न सुनी। आज ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों उस पर कोई भूत सवार हो गया है।

आखिर उन्होंने वादा किया कि वे एक घण्टे के अन्दर जेवर लेकर लौट आने का प्रयत्न करेंगे। बड़े दुख के साथ उन्होंने यह हठ पूरा करने का वचन दिया और वह अपने बँगले की ओर चले गये।

अपनी स्त्री का सौभाग्यचिन्ह छीन लेने से उनके अपने हृदय पर एक सख्त चोट लगेगी और इससे कितना बड़ा अनर्थ होगा, यह बात वे जानते थे। परन्तु पिछले छै महीनों से वे जाई के सौन्दर्य पर इतने लट्टू हो रहे थे कि दिन के कुछ घण्टे बिताने के लिए वे कोई भी घोर कृत्य करने में न हिचकिचाते।

कल की घटना से उसके दुख की पराकाष्ठा हो गई है। अपने जीवन को सुमार्ग पर चलाने की इच्छा सफल न हो सकी और अब वह आशा उसे हमेशा के लिए छोड़ देनी चाहिए। वह न तो अब स्वतन्त्रता से विचार करने के लिए ही स्वतंत्र है और नहीं संसारिक सुखों के विषय में उसकी पसन्दगी या नापसंदगी का प्रश्न रह गया है। अब से वह अपनी मा और मामा की दुष्ट वासनाएँ पूर्ण करने का साधन बन गई है। तो फिर उन्हें ही अपने शरीर का उपयोग करने देकर क्यों न वह उन्हें प्रसन्न करे। ऐसे ही मस्तिष्क में आनेवाले विचारों से चिढ़ और खीझकर आज जाई ने इतनी निष्ठुरता और निर्मोही हो रामराव के साथ ऐसा बर्ताव किया; परन्तु उनके चले जाने के बाद आज से छ: महीने पूर्व की शुद्ध और कोमल भावना तथा आज के क्रूर कर्मों के चित्र दोनों ही उसकी आँखों के सामने नाचने लगे। इस समय उसे पश्चात्ताप हो रहा था और उसी कारण वह रो रही थी।

११

रामराव घर आकर सीधे अपनी स्त्री के कमरे की ओर जाने लगे।

अन्दर घुसने में आज उनके पैर लड़खड़ाने लगे; मन झिझका। मुँह काला पड़ गया। जिस नीच कर्म को करने के लिए वे जा रहे थे, उसकी कल्पना से ही उनके शरीर से पसीना छूटने लगा।

जैसे बहती लकड़ी प्रवाह के अन्त में ही जाकर रुकती है उसी प्रकार जाई के घर से निकलते समय जिस उन्माद ने रामराव के मस्तिष्क को घेर लिया था वह अधःपात की परिसीमा पर ही जाकर रुकनेवाला था।

जो नौकर-चाकर उनकी स्त्री की बीमारी के कारण दुखी थे और यथा-शक्ति अपनी मालकिन की सेवा कर रहे थे आज रामराव को आया देख सभी प्रसन्न हुए। उनसे बहुत दिनों से मिलने के लिए छटपटानेवाली सुशीला देवी को इस बात से कितना आनन्द होगा, इसे वे लोग जानते थे। उन्हें निस्सं-कोच बातें करने का अवसर देने के लिए वे सब बाहर चले गये।

बहुत दिनों से बीमारी के कारण निस्तेज हुई सुशीला की आँखें रामराव को आया देखकर चमक उठीं। बीमारी के कारण गाल अन्दर धँस गये थे, इन पर कभी हँसते गड्ढे नहीं पड़ते, वह आज पड़ गये। जरा सा भी न हिल सकनेवाला शरीर मानो बिजली का झटका लगने से रामराव की ओर मुड़ा।

'ईश्वर की कृपा बिना ही आज मुझ दासी को आपने स्मरण किया, यह मेरी तकदीर है।' प्रेम करुणा और निष्ठा से गद्गद् हुए हृदय से तथा भास आये हुए कण्ठ से ये शब्द बाहर निकले।

जाई ने रामराव के हृदय पर संपूर्ण अधिकार जमा रखा था। फिर भी सुशीला के ये शब्द थोड़े देर के लिए ही उन्हें चुभ से गये।

उसके बिस्तर पर बैठ, धीरे से उसका हाथ अपने हाथ में ले बनावटी प्रेम दिखाते हुए उन्होंने कहा 'यानी क्या तू समझती है कि मुझे तेरी याद नहीं आती! आजकल चचा ने आढ़त की जिम्मेदारी मेरे ही सिर डाल दी है, इस कारण मुझे जरा-सी भी फुर्सत नहीं मिलती, क्या यह तू नहीं जानती?'

'हाँ मैं जानती हूँ कि एक बार अपने रोज के कामों में लग जाने पर तुम लोगों को किसी भी बात की सुध नहीं रहती है। लेकिन एक-दो दिन में तो एक बार मुझसे मिल जाया करो नाथ! यदि आपको स्त्रियों के हृदय की जरा सी भी कल्पना होती तो आप बिलकुल साधारण तौर से यह बात न कह सकते, ऐसा करना आपके लिए असम्भव होता...'

सच बताऊँ! इधर कुछ दिनों से आप मेरी ओर से कुछ खिंचे हुए से

दिखाई देते हैं। दिन पर दिन गुजर जाते हैं परन्तु आपके दर्शन नहीं होते ; न कभी आपके मधुर शब्द भी सुनने को नहीं मिलते हैं। ऐसा मैंने कौन-सा अपराध किया है। इन बातों से जो वेदनाएँ दिन-रात मैं सहन कर रही हूँ, क्या उन्हें आप जानते हैं ? अच्छा मेरी बात छोड़िए शायद मैंने आपका कोई अपराध किया होगा, परन्तु बच्चा और वह भी पहिला—उसके प्रति आप इतनी निष्ठुरता कैसे दिखा सके ?...

इस समय मृत शिशु की स्मृति से सुशीला की आँखें और कण्ठ भर आया। उसकी आँखों से आँसू टप टप गिरने लगे। रामराव ने अपना अपराधी मुँह छिपाने के लिए एक ओर घुमा लिया।

थोड़ी देर रुककर फिर वह हिचकियाँ लेते हुए बोली 'उसका हँसता हुआ चेहरा, स्वस्थ शरीर और गोरा रंग अब भी मुझे विस्मृत नहीं हो रहा है। मानो वह नक्षत्र था ! वह पैदा होते ही मैं अभागिन बीमार हो बिस्तर से लग गई। मैंने सोचा था आप उसकी देखभाल करेंगे। परन्तु पैदा होने के बाद से न तो उसे आप ने कभी गोदी में ही लिया और न एक बार उसकी ओर स्नेह भरी दृष्टि ही डाली। मा-बाप की सुश्रुषा न मिलनेवाली सन्तान का और क्या हो सकता था ? क्या सुश्रुषा पैसे से खरीदे नौकर-चाकर कर सकते थे ? उसके बुरे हाल हुए, इसी लिए काल ने मेरा रतन चुरा लिया। मैं अभागिन आपके प्रेम से वञ्चित हुई पर उसका फल भोगना पड़ा मेरे दुलारे को ! कहिए यह सच है न ?

इसके बाद सुशीला अधिक जब्त न कर सकी। वह हिचकियाँ लेती हुई फूट-फूटकर रोने लगी।

उसकी यह दशा देख रामराव के दिल पर चोट लगी। जिस बात के लिए वे वहाँ आये थे, उसे पूरा किया जाय या नहीं ; इस विषय में उनका विचार डाँवाडोल होने लगा। इसी समय बाहर की घड़ी ने दस बजाये। जैसे ही उसकी आखिरी चोट बजी इन्हें फिर मोह ने आ घेरा।

तुरन्त ही सुशीला का हाथ धीरे से दबाकर मजबूती से पकड़ते हुए वे बोले 'देखो यह तकदीर का खेल है। अब उससे मन दुखी करने से क्या

लाभ ? अनजाने में यदि मैंने तुम्हारी अवहेलना कर दी हो तो उसका कुछ और अर्थ न निकालो। अब से मैं तुमसे रोज़ मिलने आया करूँगा। फिर तो खुश हो ? लेकिन दवा ठीक से लिया करो। इस विषय में सुस्ती या दुर्लक्ष करना उचित न होगा।

रामराव के आश्वासनप्रद शब्द सुनकर सीधी और भोली सुशीला का हृदय प्रसन्नता से भर गया ! गद्गद् हो वह बोली 'क्या सच ? आप नित्य ही मुझे दर्शन दिया करेंगे ! यदि ऐसी बात है तो फिर दवा की मुझे तनिक भी आवश्यकता नहीं। आपके दर्शन से ही मैं अच्छी हो जाऊँगी।'

रामराव का ध्यान उसके इन शब्दों की ओर ज़रा भी नहीं था। अब तक की बनावटी प्रेम की प्रस्तावना के बाद अब वे अपने असली मतलब को कहने की हिम्मत कर रहे थे। आखिर तनिक हँसते हुए उसकी ओर देखकर, बड़ी सावधानी तथा मधुरता से हर एक शब्द का उच्चारण करते हुए उन्होंने कहा 'हाँ सुनो तो औरतों को जेवर प्राणों से भी अधिक प्यारे होते हैं। पति के लिए वे अपने जेवर त्याग सकती हैं या नहीं, यही उनके पति-प्रेम की सच्ची परीक्षा है और इसी कसौटी पर तुम्हारे प्रेम को मैं परखना चाहता हूँ।'

इसे सुन सुशीला तनिक अस्वस्थ हो बोली 'परन्तु इसके पूर्व ही आपने मेरे प्रेम को इतनी बार कसा है कि अब मेरे पास परीक्षा के लिए अब जेवर रह ही कहाँ गये हैं।'

'क्यों ऐसा कहती हो आढ़त में पैसे की बड़ी जरूरत है। उसी के हेतु तेरी यह मोतियों की लड़ी...' रामराव की जबान लड़खड़ा गई और वे अगले शब्द न बोल सके।

इसे सुन सुशीला का हृदय मानो दो टुकड़े हो गया।

'क्या एक लड़ी ! मेरा मंगलसूत्र आप माँग रहे हैं ?' एक दम चौंककर भयभीत हो उसने प्रश्न किया और अभी-अभी जो अश्रु-प्रवाह रुका था, वह फिर जारी हो गया।

अब तक आवश्यकता पड़ने पर इन दिनों मैंने एक-एककर सारे जेवर दे डाले। मुझे जेवरों की चिन्ता नहीं; परन्तु मुझ पर दया करो और मेरा यह

जेवर रहने दो। कारण यह मेरा सौभाग्य-चिह्न है। इसके अलावा यह ससुरजी की यह निशानी है इस कारण यह मुझे और भी अधिक प्रिय है। ईश्वर की कृपा से जो स्त्री सौभाग्यवती हो, वह अपने सौभाग्य-चिह्न मंगल सूत्र को कैसे दूर कर सकती है। मेरे जीवन के अब बहुत थोड़े दिन बाकी हैं, तब तक इसे मेरे गले में रहने दो। बाद में तो यह आप ही का है।'

रुद्ध कण्ठ से और मिन्नते करते हुए सुशीला जब यह कह रही थी तो रामराव ने अपने चचा को आते देखा। वे सुशीला का हाल पूछने आ रहे थे। उन्होंने सोचा चाचा के आ जाने पर उनका इरादा पूरा न हो सकेगा। रामराव के हृदय की दयामाया और कोमलता आज के जाई के शब्दों से सभी नष्ट हो चुके थे। उन्होंने ज़रा भी सोचे बिना निष्ठुरता से सुशीला के गले पर हाथ डाला। सुशीला एक बार चीखी। दूसरे ही क्षण रामराव मोतियों की माला तोड़ लेकर चचा के अन्दर घुसनें के पूर्व ही पिछले दरवाज़े से बाहर निकल गये।

१२

रामराव का परिचित पदशब्द सुन जाई ने चट से आँखे पोंछ डालीं; तुरन्त ही रामराव अन्दर आये। उनके हाथ में मोतियों की लड़ी थी और उन लड़ियों के बीच पिरोये सोने के मंगलमणि थे। उसे देख जाई का हृदय काँप उठा। रामराव की ओर आँख उठाकर देखने की उसकी हिम्मत न हो रही थी।

'राक्षसी—'

सर्राये हुए कण्ठ से कहे गये रामराव के ये शब्द जाई ने सुने। हमेशा रामराव उसकी ख़ुशामदें करते समय अनेक मधुर नामों से पुकारा करते थे। परन्तु आज उन मधुर नामों के बजाय यह नया सम्बोधन तथा उसमें भरी निष्ठुरता और भयंकर तिरस्कार उसके कलेजे में लोहे की गरम की हुई सलाखों की तरह जा लगा।

'मैंने अपनी साध्वी स्त्री र जबरदस्ती छीन लाये सौभाग्य-अन्धकार को लेकर सुखी हो। इस जेवर को छीनने में मैंने जो नीच कृत्य किया है, उसके

दुख से दुखी हो उसने शायद जीवन-लीला ही समाप्त कर दी होगी। यह सुन तेरे नीच हृदय में ठण्डक पड़ेगी।

यह कह हाथ की मोतियों की माला रामराव ने जाई के बदन पर फेंक दी और अत्यन्त दुख के कारण वे कोच पर बैठ गये।

एक दो क्षण बाद ही जीने पर कुछ गड़बड़ सुनाई दी 'राव साहब ! राव साहब !' इस प्रकार जल्दी-जल्दी दी हुई पुकार सुनते ही रामराव ने अपने नौकर का आवाज पहिचान लिया। उसे सुन वे तुरन्त ही बाहर निकले। उन्हें देखकर चिन्ताक्रान्त खड़े दोनों नौकरों ने कहा 'बड़े सरकार ने आपको जल्दी ही घर बुलाया है। छोटी मालकिन बेहोश पड़ी हैं और डाक्टरों का कहना है कि उनका अन्त समय नजदीक है।'

यह सुनते ही क्षण भर की भी देर न कर रामराव रघूदादा के घर से निकलकर नौकर के पीछे हो लिये।

थोड़ी देर पूर्व कहे गये रामराव के शब्दों तथा नौकरों के लाये हुए समाचार को सुनकर जाई के हृदय पर विचित्र परिणाम हुआ। अनेक दुखी विचारों से उसका हृदय भर गया। उसके कमरे से निकल छत पर से जाते हुए रामराव की ओर अश्रुभरे नेत्रों शून्य हो देखती हुई जाई पागलों की तरह उठ खड़ी हुई। ऐसी दशा में एक दो ही मिनट खड़े रहने के पश्चात् उसके हृदय में रामराव के पीछे जाने की इच्छा प्रबल हो उठी। उसे ऐसा ज्ञात हो रहा था, मानो कोई अदृश्य शक्ति उसे उस ओर घसीटे लिये जा रही है। जादू किये गये व्यक्ति की तरह वह तुरन्त ही अपना घर छोड़ रामराव के पीछे-पीछे जाने लगी। उन दोनों में काफी अन्तर था फिर रामराव अपने बँगले तक उसकी आँखों से ओझल न हो सके।

संसार में बहुत-सी ऐसी बातें हो जाती हैं, जिनकी कार्य-कारण-परायणता ढूँढ़ निकालना मुश्किल होता है। रामराव के पीछे जाने की उसे क्यों प्रवृत्ति हुई और बाद में इसका क्या परिणाम होगा, यह स्वयं जाई भी न बता सकती थी।

जहाँ रामराव अन्दर घुसे थे उस जगह को पहिचान वह भी अन्दर

घुसी। अन्दर घुसते ही बँगले में ज़िस ओर हलचल हो रही थी, उस ओर अपने आप ही उसके पैर मुड़ गये। एक कमरे के पास पहुँचते ही उसने वहाँ बहुत से आदमियों की भीड़ देखी। हतबुद्ध हो वह बाहर ही एक ओर खड़ी हो गई। उसने देखा कि रामराव की स्त्री का उपचार करने में डाक्टर संलग्न है और लोग उसे सामान ला देने के लिए इधर-उधर भाग-दौड़ कर रहे हैं।

थोड़ी देर में डाक्टर ने अपने उपचार बन्द किये और वह जाने लगा। चलते समय रामराव के चचा को उद्देश कर उसने कहा 'मेरे विचार से तो इनकी बीमारी बढ़ने का कारण यही है कि इन्हें अचानक किसी बात का जबरदस्त सदमा पहुँचा है। बस एक-दो घंटे तक ये और जियेंगी और आखिर तक प्रमादी व्यक्ति की तरह बीच-बीच में बड़बड़ाती रहेंगी। आप लोग अगली व्यवस्था करें।'

यह सुन रामराव के चचा ने दुःख की एक लम्बी साँस ली। और डाक्टर के जाते ही सारे आदमियों को किसी न किसी काम से बाहर भेज दिया। और एक व्यक्ति के बच रहने पर वे स्वयं भी बाहर चले गये और उस व्यक्ति को उनकी सुश्रूषा करने के लिए छोड़ गये।

जाई अब भी कमरे के बाहर एक कोने में खड़ी थी। रामराव की स्त्री का बीच-बीच में बड़बड़ाना उसे सुनाई दे रहा था। इतने में उसे ऐसा भ्रम हुआ मानो कोई उसे पुकार रहा है।

'जाई—जाई—'

किसी के उच्चारण किये ये शब्द उसे सुनाई दिये। आवाज़ कमरे की ओर से आ रहा था। वह ज़रा पास गई और फिर वही शब्द सुनाई दिया। उसे निश्चय हो गया कि यह उसका भ्रम नहीं था, सचमुच ही कोई उसे पुकार रहा है।

उसकी उस हतबुद्ध परिस्थिति में यह खुलासा नहीं हो रहा था कि उसे कौन पुकार सकता है। इस घर में रामराव के सिवा उसे और कोई नहीं पहिचानता था। शायद यह उन्हीं की पुकार तो नहीं है? यह विचार उसके मस्तिष्क में आते ही वह तुरन्त दरवाज़ा खोलकर अन्दर गई। परन्तु कमरे

के एक कोने में एक पलंग पर सोई रोगिणी स्त्री के सिवा वहाँ और कोई नहीं था।

'जाई—जाई—' वह चौंककर देखने लगी। अब उसे निश्चय हो गया कि बीमार स्त्री ही उसे पुकार रही है। उसका आश्चर्य अब और भी बढ़ गया। 'क्या वह मुझे ही पुकार रही है। या मेरे ही नामवाली किसी दूसरी, अपनी जान-पहिचानवाली, स्त्री को पुकार रही है।' इस प्रकार सोचकर बड़ी उत्कंठा से वह अगले शब्द कान लगाकर सुनने लगी।

पाँच-दस मिनट तक रामराव की स्त्री केवल उसका ही नाम लेकर पुकारती रही। इसके बाद कुछ अटक-अटककर और कुछ कहने लगी। जाई उसे ध्यान से सुनने लगी। उसका प्रत्येक शब्द उसके कलेजे में तीर-सा चुभने लगा।

'जाई—जाई—कितने वर्षों बाद तेरी भेंट हो रही है...'

'इतने दिनों तो कहाँ रही...?'

'तुझे मैं कभी न भूल सकी...'

'तू इतने प्रेम से पूँछती है...क्या बताऊँ...अपने फूटे भाग्य की... कर्म-कथा......'

मेरे ससुर...स्वर्गवासी हुए...बेलगाँव का घर छोड़ दिया...इधर आये...

'ईश्वर जाने...मेरे पूर्व-जन्म...के कौन से पापों के कारण...उनका प्रेम मुझ पर से उड़ गया...मेरा चाँद-सा सुन्दर मुन्ना...उसके हाल हुए...मुझे वह छोड़ गया......'

उन्होंने एक अत्यन्त अमंगल कृत्य...तेरे बदन पर रोमाञ्च हो उठेगा... मोतियों की माला गले से तोड़कर ले गये......

परन्तु जाई! भला यह क्या? तू रोने क्यों लगी?

तेरा वह बचपन का पागलपन अब भी...मुझे अच्छी तरह याद है... माई के मारने के कारण...नागेशी के तालाब पर बैठी मैं रो रही थी...तू भी रोने लगी...'तेरा दुख देख...मुझे भी दुख होता है...'

तेरे वे शब्द कैसे भूल सकती हूँ...तेरा कोमल हृदय अब भी वैसा ही है...तू कितनी स्नेहमयी है।'

शोक विह्वल हो बीच-बीच में दुख से हिचकियाँ लेते हुए रामराव की स्त्री ने अब बड़बड़ाना बन्द कर दिया था। अब तक ज़ोर-ज़ोर से चलनेवाली साँस की आवाज़ बिलकुल धीमी पड़ गई थी।

'जुही—जुही' भरे हुए गले से और दुखी हृदय से जाई की यह चीत्कार सुनाई दी।

वह जल्दी से जाकर अपनी सहेली से लिपट गई, पर वह एक क्षण पूर्व ही इस संसार से चल बसी थी। उसकी आँखों से अविरल अश्रु बह-बहकर उसकी सहेली पर मानों अभिषेक कर रहे थे।

बड़ी देर बाद उसके दुखी हृदय से शब्द बाहर निकले।

'जुही बहिन! तेरे सोने के संसार में आग लगानेवाली पापिन मैं ही हूँ। तेरे प्राणपति को तुझसे छीन लेने का नीच कृत्य मैंने ही किया। पितृप्रेम से विमुख कर तेरे सन्तान की मैंने ही हत्या की है। यह अन्तिम घातक आघात कर मैंने ही तेरे प्राण हर लिये। तुझे काल के मुख में मैंने अपने हाथों ढकेला...

बता किस प्रायश्चित्त से तू मुझ पापिन को क्षमा कर देगी। क्या देहान्त प्रायश्चित्त करने पर तो मेरे पापों का परिमार्जन हो सकेगा...

मेरे पापों के लिए इतनी भी सजा कम है पर जीवित रहकर मैं और न जाने कितनी सुहागिनों के सौभाग्य-सुख में ज़हर मिलाऊँगी। मैं हतभागी जीवन का यदि आज ही अन्त कर दूँ तो शायद भविष्य के होनेवाले अनर्थ टल जायँगे।

यह कह सामने के आले में रखी हुई शिशियों में से एक शीशी उठाकर उसकी दवा उसने पी डाली।

उस शीशी पर 'ज़हर—पेट में न लेने की दवा' इस प्रकार साफ़ और बड़े-बड़े शब्दों में लिखा हुआ था।

जाई और जुई की दो कलियाँ इस प्रकार काल ने मसल डालीं।

नदी की बाढ़

सान्तु शर्णै और पावलू-द-सा—इन दोनों पड़ोसियों में कुछ अनबन हो गई है, यह खबर जब बाहर फैली, तब इस पर कोई विश्वास न करता था ; परन्तु कुछ दिनों के बाद जब गाँव की बिरादरी में लोगों ने उन्हीं दोनों को एक दूसरे की बुराई करते हुए सुना, तब उस पर उन्हें विश्वास करना ही पड़ा। सारे फूलगाँव में यह एक बड़े कुतूहल और विस्मय की बात हो रही थी और ऐसा होना स्वाभाविक भी था। उन दोनों के घर फूलगाँव में इतने प्रतिष्ठित और खानदानी समझे जाते थे कि गाँव की पंचायत के कार्य, ज़मींदार और रैयत के बीच के झगड़े, गाँव के अन्य उपद्रव, बिना किसी प्रकार की कौटुम्बिक खटपट आदि के विषय में बिना सांतु शर्णै और पावलू-द-सा की सलाह के एक पत्ता भी नहीं हिल सकता था। ऐसी उस गाँव की स्थिति थी। यद्यपि सांतु शर्णै एक हिन्दू और पावलू-द-सा एक क्रिस्तान था, उन दोनों कुटुम्बों में पीढ़ियों से इतना जबरदस्त घरापा और हेल-मेल चला आता था कि उन दोनों में कभी बिगाड़ होगा, ऐसी किसी की कल्पना भी नहीं हो सकती थी।

इस तरह के मज़बूत पाये पर आधार रखनेवाले इन दोनों पड़ोसियों के स्नेह को उखाड़कर फेंक देनेवाली बात भी कितनी तुच्छ थी।

सांतु शर्णै का नाती सोनू ही इस झगड़े का कारण था। केवल सोलह-सत्रह वर्ष का अभी कल का बच्चा ; परन्तु ननिहाल में आये अभी चार दिन भी नहीं हुए थे कि इसी बीच में उसने इस तरह की वैर-विरोध की आग सुलगा दी।

परन्तु अगर दूसरी तरह विचार किया जाय, तो सोनू कोई साधारण व्यक्ति न था। उसका मकान 'गोवा काक पूना' अर्थात् एक काफी प्रसिद्ध बड़े शहर में था, वहाँ पर वाचनालयों, व्याख्यानमालाओं और सार्वजनिक विषयों

की चर्चाओं द्वारा प्राप्त कर नाना प्रकार के कच्चे-पक्के ज्ञान को मस्तिष्क म इकट्ठा किये हुए अकाल पाण्डित्य प्राप्त एक शहर के-से नवयुवक का वह अच्छा नमूना था। एक के बाद एक स्थापित होकर टूट जानेवाले विद्यार्थियों के पाँच-छः संघों में वह शामिल भी रह चुका था। इतना ही नहीं, शहर में होनेवाली अनेक सभाओं में उसे धीरे-धीरे अनुमोदक, सूचक और आभारक आदि का पद मिलने लगा था। इस तरह होनहार देशभक्त की हैसियत से सभी लोग उसे चाहते थे।

इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि ऐसा कोई भी राजनैतिक, धार्मिक अथवा सामाजिक विषय न था जिसके सम्बन्ध में उसे ऐसा विश्वास न हो गया हो कि वह सर्वज्ञाता है।

विशेषतः समाचार-पत्रों में गत कई मासों से उत्तर भारत में स्थान-स्थान पर होनेवाले हिन्दू-मुसलमान-दंगा-सम्बन्धी आई हुई खबरों और लेखों को पढ़ने से 'विधर्मियों का हिन्दुओं पर आक्रमण' हुआ, यह विषय कहीं उसके हृदय पर ज़बर्दस्त कब्ज़ा जमा रहा था। चर्च के क्रिस्तानों के एक आधे धार्मिक जलूस या काले कपड़े पहिने हुए किसी पादरी पर उसकी दृष्टि पड़ भर जाय कि बस, गोवा में हिन्दू और क्रिस्तानों के बीच के हृदय-स्पर्शी दृश्यों की खबर आस-पास के लोगों के कानों तक पहुँचाने के लिए सोनू का आवेश-पूर्ण ओजस्वी भाषण शुरू हो जाता था। ब्रिटिश महाराष्ट्र के वर्तमान-पत्रों में आये हुए कुछ हिन्दू-मुसलमान-दंगा-सम्बन्धी लेखों को उसने इस तरह कंठाग्र कर लिया था कि किसी भी समय इस तरह के किसी भी व्याख्यान के लिए उपयुक्त सामग्री हमेशा ही उसे तैयार मिलती थी। केवल आवश्यकता इतनी थी कि उस लेख में 'मुसलमान' शब्द को उड़ाकर वह उसके स्थान में 'क्रिस्तान' शब्द भर रख दे।

फूलगाँव में आने के दिन से ही इस विषय पर सोनू के जोरदार व्याख्यान शुरू हो गये, गोया शहर में हिन्दू और क्रिस्तानों के बीच जो कुछ राजनैतिक विषयों में स्पर्द्धा और क्रिस्तानों के पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण करने के कारण जो कुछ थोड़ा बहुत भेद-भाव दिखाई पड़ता था, वह फूलगाँव

की तरह एक प्रख्यात गाँव में कोई भी अस्तित्व रखे, यह बिलकुल असंभव था ; अर्थात्—यहाँ पर इन दोनों समाजों के बीच गहरी एकता और आपस का बर्ताव सोनू के लिए हिन्दू-समाज पर अपने-आप लाया हुआ एक महान् अरिष्ट था और इसीलिए 'भय का बिगुल' बजाकर हिन्दुओं को जगाने के लिए और उन्हें आक्रमणशील बनाने के लिए उसे कमर कसना पड़ा, इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

सन्तु शर्णौ के घर के चबूतरे पर प्रतिदिन गाँव की वृद्ध-मंडली संध्या के समय इधर-उधर की गप-शप करने और मनबहलाव के लिए घंटे-डेढ़-घंटे को जमा हुआ करती थी। आज तक उसने अपने विद्वान् नाती के पाण्डित्य के विषय में जो कुछ लोगों से बढ़-बढ़कर बातें कही थीं, वह किसी तरह झूठी न थीं। यह दिखाने के लिए एक बार इस मंडली के सामने उसके ज्ञान और होशियारी के प्रदर्शन की बात सन्तु शर्णौ सोच ही रहा था ; अतः बैठक में सोनू को प्रवेश करने में देर न लगी। एक-दो दिन में उसने श्रोताओं के ऊपर अपनी अच्छी धाक जमा ली और उसके इस मनचाहे विषय पर व्याख्यानों का होना उस बैठक के खास दैनिक कार्यक्रम का एक अंग हो गया।

उज्ज्वल आर्य-संस्कृति, सनातन हिन्दू-धर्म, मदान्ध मुसलमान और पोर्तुगीज, वास्कोडिगामा, जेजुइट्स इन्क्विजिसन्, औरंजेब, जजिया कर, स्वामी दयानंद, आर्य-समाज, हिन्दू शहीद आदि निर्णयवाले महत्त्व के विषयों पर उसके ओजस्वी वाक्य-पाण्डित्य को सुनते ही बन आता था। उसके श्रोतागण इस तरह तल्लीन हो जाते थे कि कभी-कभी सुनने की धुन में हुक्के को गुड़-गुड़ाना तक भूल जाते थे।

परन्तु हिन्दू-धर्म पर उसके प्रवचनों को रोज सुनने पर भी वास्कोडिगामा द्वारा हिन्दुओं की प्राण-हानि और दिओग रुद्रीगिशन द्वारा धूल में मिलाये हुए देवालयों का हृदय-विदारक वर्णन सुनकर दुःख से आह भरने पर भी 'हिन्दुओं को हृदय से लगाओ, विधर्मियों को ठुकरा दो'—इस सूत्र के उत्तराद्ध पर दिये हुए व्याख्यानों के पश्चात् जब सान्तु बाबा के चबूतरे के ऊपर की बैठक बरखास्त हो जाती, तब घर वापस जाते समय समस्त श्रोतागण

रास्ते में पावलू और उसके अन्य पड़ोसी क्रिस्तानों के चबूतरों पर बारी-बारी से कुछ देर ठिठकते और शिष्टाचारार्थ उनकी दी हुई बीड़ियाँ जब तक खतम होकर अँगुलियों को न झुलसाने लगतीं, तब तक मैत्री के नाते परस्पर के दैनिक सुख-दुःख के समाचार पूछते खड़े रहते थे। यह उन लोगों के व्यवहार की एक ऐसी घटना थी, जिसे वे कभी भी न भूलते थे ! वृद्ध-मंडली के इस प्रकार के वर्ताव को देखकर सोनू को औंधी गगरी पर पानी डालने के सदृश ही अपने व्याख्यानों का असर उन पर जान पड़ा।

अन्त में यह आजमाने के लिए कि हिन्दू-धर्म के उद्धार का महत्कार्य अपने ऊपर लेने के लिए ये लोग कहाँ तक तैयार हैं, उसने एक दिन यह प्रस्ताव लोगों के सामने बड़े ही जोरों के साथ और बिना किसी रोक के रखा कि गोवा की हिन्दू-समाज का यह धर्म है कि अब वह सावधान हो जाय और क्रिस्तानों पर चढ़ाई करने की अपने मन में ठान लें। इसी का बहुत ही जोरदार शब्दों में प्रतिपादन कर अपने श्रोताओं से विनती की : अगर वे चाहें तो इस विषय में क़दम बढ़ाकर और लोगों के सामने एक उज्ज्वल उदाहरण रख सकते हैं।

उसके इस हद तक पहुँचने पर बहुत से लोग बड़े चक्कर में पड़ गये। एक-दो ने किसी तरह समय बिताने के इरादे से उसकी हाँ में हाँ मिला दिया। कुछ लोगों ने उसकी इस बात की हँसी उड़ाने का प्रयत्न किया। एक धूर्त्त ने कहा—पण्डित सोनू के उपदेश के अनुसार हम लोगों को अवश्य चलना चाहिए, नहीं तो हम लोगों के हिन्दू-धर्म में जन्म लेने का क्या फल ? अब बरसात के दिन नजदीक आ गये हैं। लोगों को फ़ुर्सत नहीं; परन्तु जरा इन दो-तीन महीनों को बीत जाने दो और दशहरा आने दो। उसी दिन इस पवित्र कार्य का आरम्भ कर दें। और इस तरह उसने मीठे शब्दों में सोनू के बताये हुए मार्ग का अच्छा मजाक उड़ाया; परन्तु उन लोगों में एक मुँह-फट बुड्ढा भी था। ब्रिटिश भारत में होनेवाले हिन्दू-मुसलमानों के बीच के टंटे-बखेड़ों की तरह अथवा मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं पर किये गये अत्याचारों की तरह एक भी घटना उसकी सारी जिन्दगी में न गुजरी थी; इस

बात को लोगों के सामने उसने बड़े ज़ोरों के साथ रखा। साथ ही आज तक क्रिस्तानों के साथ जिस हेल-मेल के साथ पुरखा रहते चले आते थे, उसी के मुताबिक चलने का उसने दृढ़ निश्चय दिखाया ; फिर सोनू के उपदेश की मूर्खता बताकर उसने उसे 'छोटे मुँह बड़ी बात', 'अभी कल का बच्चा' आदि तुच्छ उपाधियाँ दीं।

खुद का और साथ ही अपने उच्चत्व का इस प्रकार एक गाँव के पुराने खुड्ढ द्वारा उपमर्द सोनू को कब सहन होनेवाला था। वह आगबबूला हो गया। उस विषय में शास्त्रार्थ करने के लिए उसने अपने प्रतिस्पर्द्धी को आवाहन किया ; परन्तु इस बात को मंजूर करने का इस पुराने बूढ़े को कब साहस हो सकता था।

एक बार लड़कपन में जब वह सोनू को कंधे पर लिये जाता था, तब सोनू ने उसका धोबी के यहाँ का धुलाया हुआ नया दुपट्टा बिगाड़ डाला था। और इसी तरह एक दूसरे समय जब उसने कुछ बदमाशी की थी, तब उसने उसका कान पकड़ा था, आदि उसकी लड़कपन की बातों की याद दिलाकर अपनी आयु की श्रेष्ठता की ढाल सामने रख उसने सोनू से कुछ देर वाद-विवाद किया और उसके बाद वह सान्तु शर्णा के चबूतरे से खिसका और पापलु के चबूतरे पर हो रहा।

बस ! उसी दिन से सोनू को पूरा विश्वास हो गया कि इन पुराने वृक्ष के खोखलों को कितना भी सींचो ; परन्तु इनमें कोंपलें फूटने की नहीं। हिन्दू-धर्म के भविष्य को इस प्रकार के मुरदा-दिल बुजुर्गों पर छोड़ना महान् भूल थी। आजकल के बालकों में ही स्फूर्ति लाने का प्रयत्न करना एक उत्तम मार्ग है ; क्योंकि वे ही समाज के भावी आधार-स्तंभ हैं। उन्हीं में से हिन्दुत्व की दिव्य पताका को सारे संसार में फहरानेवाले कल के धर्मवीर निर्माण होंगे।

दूसरे ही दिन से सोनू ने अपना कार्य-क्षेत्र बदल दिया। चबूतरे के ऊपर के जमाव को सदा के लिए प्रणाम कर वह घर के अग्र भाग में, आँगन में, अथवा बरंडे के अन्दर नारियलों के समूह में, नाना प्रकार की शैतानी करते हुए आर्य-कुमारों में प्रचार करने लगा।

हिन्दू-धर्म का दिव्य सन्देश उनके हृदयों तक पहुँचा देने के लिए उसने बड़े जोरों के साथ अपनी व्याख्यान-माला शुरू की और इस बार उसे सफलता के चिह्न जल्दी ही प्रत्यक्ष दिखाई देने लगे। जिन ऐतिहासिक वर्तमान-कालीन हिन्दू शहीदों का आदर्श अपनी कल्पना का सहारा लेकर मनचाही रीति से गढ़कर सोनू उन लोगों के सामने रखता था, उनका असर फूलगाँव के बालकों पर पड़ने में अधिक विलम्ब न लगा।

दो ही तीन दिन बीते होंगे कि एक दिन दोपहर के समय सोनू का दस-ग्यारह वर्ष का ममेरा भाई भिसू, बावलू तथा अन्य अड़ोस-पड़ोस के लड़कों के साथ सोनू को लेकर, बाल-शिवाजी की उस समय की कहानी जब उसने बीजापुर के मुसलमान कसाइयों के सिर उड़ा दिये थे, बड़ी उत्सुकता के साथ सुन रहा था। जिस समय कि सभी लोग भरपूर जोश में थे, उसी की उमर का पड़ोस के पावलू का नाती सांतान दौड़ता हुआ वहाँ आया। किसी तरह उसके चूतड़ों को छिपानेवाली एक जाँघिये के सिवा उसके शरीर पर और कुछ न था। उसके सिर पर भी एक बालों की पतली लहर के सिवा और कुछ न था। या यों कहिए कि उसका सिर घुटा हुआ था। उसके गेहुएँ रंग की चमड़ी पर केवल एक ही वस्तु खुलकर दिखाई देती थी और वह था हाथी-दाँत का बना हुआ 'क्रास' जो कि सोने की जंजीर के सहारे उसके गले में पड़ा था। पतले डोरे से पैर बाँधे हुए एक तितली उसके हाथ में थी और क्रिस्तानी उच्चारणों के साथ वह लगातार कुछ बड़बड़ा भी रहा था। उसके ऊपर दृष्टि पड़ते ही सोनू का मिज़ाज एकदम गरम हो गया। अपने भाषण को वहीं रोककर उसने अपनी आँखें उसी पर गड़ा दीं।

परन्तु सान्तान इतने से थोड़े ही डरनेवाला था। दोपहर के समय सांतु शणै के चबूतरे पर आकर भिसू और बावलू के साथ हो-हल्ला मचाना और शोर-गुल करना ही उसकी कितने वर्षों की पुरानी झक थी। वहाँ पर आकर उसे केवल एक ही नियम का पालन करना पड़ता था और वह यह कि भिसू और बावलू को छूकर वह उनके कपड़े गीले न कराये। इस नियम के पालन करने का उसे ऐसा अभ्यास भी हो गया था कि खेलते समय क्वचित् आये

हुए एक-आध हाथापाई के प्रसंग को छोड़कर और कभी वह इस नियम का उल्लंघन नहीं करता था।

सान्तु शर्मा के चबूतरे पर आज और दिनों से ज्यादा जमाव देखकर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। अपने हाथ की सफ़ाई दिखाने के इरादे से लोगों को अपने चारों तरफ़ इकट्ठा करने के लिए उसने तितली को चक्कर खिलाते हुए और कुछ बड़बड़ाते हुए एकदम नाचना शुरू कर दिया।

अब सोनू के सन्ताप की हद न थी। 'देखो इस क्रिस्तान की इतने छोटेपन से ही इस प्रकार की धृष्टता! यही बड़ा होने पर गौमाता की गर्दन पर छुरी चलायेगा। देखो! देखो? उस प्राणी को किस प्रकार तंग कर रहा है। नहीं मालूम कि इन क्रिस्तानों को अपने हिन्दुओं के घरों में इतनी आजादी क्यों दी जाती है। दूर करो इस चाण्डाल को!'—सोनू ने आवेश में कहा।

भिसू, बाबल और उनके अन्य साथी सांतान की लाई हुई तितली को वहाँ पर उपस्थित सभी लोगों की सम्पत्ति ठहराने का विचार कर रहे थे; क्योंकि तितलियों को पकड़ना उनका भी रोज़ का ही व्यवसाय था।

परन्तु सोनू के शब्दों के सुनते ही उनके होश ठिकाने आ गये। उनके शरीरों का हिन्दू रक्त उबलने लगा। सांतान को न छूने की सावधानी भर रखकर सब लोग उस पर टूट पड़े। अपने मित्रों का ही अपने ऊपर इस तरह का अनपेक्षित हमला देखकर बेचारा सांतान इतना घबड़ा गया कि उस भाग जाने की भी न सूझी और इसी गड़बड़ी में भिसू को उसका धक्का लग गया।

'सांतान ने छू लिया! भिसू को छू लिया!'—सब लोग एकदम चिल्ला उठे।

'आज तो छू ही लिया; परन्तु कल मांस लेकर तुम्हारे मुँह में ठूँस देगा!'—सन्तप्त सोनू के मुख से यह धिक्कारयुक्त शब्द निकले।

इन शब्दों का पर्याप्त परिणाम भी तुरन्त ही देखने में आ गया। भिसू ने तुरन्त ही एक तमाचा सांतान के गाल पर जड़ दिया। और लोगों ने भी नारियल की जटा, करची और खोपड़ी तथा जो कुछ हाथ मे आया, उसी से उस पर वर्षा की। सांतान ने एक-दो गाली दी और फिर रोता हुआ जी छोड़कर अपने घर की तरफ़ भागा। वीरता के घमंड में चूर भिसू ने उसका

पीछा किया। अपने घर के नजदीक पहुँचते ही सांतान उलट पड़ा और नज़दीक ही पड़ी हुई एक हड्डी उठाकर बहुत गुस्से में भिसू को मारा। उसका निशाना चूक गया और हड्डी भिसू को तो बिलकुल न लगी; परन्तु पास ही के एक कुएँ में जा गिरी।

सांतु शर्मा के घर की चहारदीवारी और पावलू के घर का बाग एक दूसरे से मिले हुए थे। इन्हीं दोनों के बीच में वह कुआँ था। दोनों ही पड़ोसी अनेक पीढ़ियों से इस कुँए को समान मिलकियत समझकर उसका उपयोग करते थे।

सांतान का फेंका हुआ हड्डी का टुकड़ा अगर भिसू को लग जाता, तो उसको स्नान करना पड़ता। इसके सिवा और कुछ न होता, परन्तु उसके कुएँ में गिर जाने के कारण उसे एक भयंकर अत्याचार करने का हीला मिल गया।

'सांतान ने कुएँ में सुअर की हड्डी डाल दी है'—यह खबर जब भिसू ने लौटकर अपने गुट्ट को सुनाई, तब लोगों में बड़ी खलबली मच गई।

'क्रिस्तान ने कुओं में हड्डियाँ और पाव रोटी के टुकड़े डालकर तुम्हारा धर्म लेते रहें और तुम मुर्दा हिन्दू कपाल पर हाथ रखकर रोओ, यह तो होता ही चला आया है!'—इस तरह से आवेश में कहते हुए सोनू ने अपने अनुयायियों पर तिरस्कारयुक्त नजर फेंकी और उनको ताना दिया।

कुछ लजाकर; परन्तु गुस्से से दाँत पीसते हुए और ओठों को चबाते हुए भिसू, बाबलू और कुछ अन्य लोगों ने उत्तर दिया—वाह, क्या हम लोग सांतान को ऐसे ही छोड़ देंगे! बेटा को जरा घर के बाहर तो निकलने दो। देखो उसको कैसा ठोंकते हैं!

'नहीं, इतने से क्या होगा?'—सोनू ने कहा—उस कुएँ में डाली हुई हड्डी निकालकर अगर बाहर भी फेंक दी जाय, तो भी अभी तीन दिन तक हम लोग उसका पानी थोड़े ही पी सकेंगे! आजकल गर्मी के दिनों में सभी कुओं का पानी सूख गया है। दूर से पानी लाने में हम लोगों को कितनी तकलीफ़ उठानी पड़ेगी! और पावलू के घरवालों को हमेशा से ज्यादा पानी खर्च करने को मिलेगा। उनको कैसा मजा हो गया! ऐसे दिनों में, जब कि

पानी की ऐसी तंगी है, यहाँ-वहाँ कुओं में हड्डी आदि डालकर अपने हिन्दू पड़ोसियों के यहाँ पानी का खर्च बन्द कर अपना मतलब सिद्ध करने का क्रिस्तानों के हाथ में यह अच्छा उपाय है। तुम कहते हो कि उसे अच्छी तरह ठोंकें, उससे क्या फायदा ? जैसे को तैसा ही चाहिए। मैं तुम्हें एक बड़ा सुन्दर उपाय बताता हूँ। अगर उसके मुताबिक करोगे, तो पावलू के घरवाले एक घण्टे में ठिकाने आ जायँगे।

सोनू की युक्ति इतनी लाजवाब, मजेदार, और अजीब थी कि उसको निकलने भर की देर थी, कि सभी लोग जानवरों के छप्परों के नीचे दौड़े और गोबर इकट्ठा करने लगे। फिर वह सब गोबर एक बड़े भारी झौए में भरा गया और सब लोग उठाकर उसे कुएँ की जगत पर लाये। तुरन्त ही सोनू की अचूक युक्ति पर अमल किया गया और वह गोबर कुएँ में उड़ेल दिया गया। कुएँ में दो-तीन घड़े से ज्यादा पानी न था; अतः उसके अन्दर गोबर और पानी का सुन्दर शीरा बनकर तैयार हो गया।

शत्रु-पक्ष की इन सारी करामातों का संतान अपने घर की खिड़की से निरीक्षण कर रहा था। भिसू के गाल पर लगाये हुए तमाचे का दुःख, तो शायद वह अब तक भूल भी जाता और भिसू के यहाँ आकर फिर उससे दोस्ती कर लेता; परन्तु इस अचानक हाथा-पाई में उसकी बड़ी मेहनत से पकड़ी तितली हाथ से छूट गई थी और इससे जो दुःख उसे हुआ था, वह जल्दी नहीं भुलाया जा सकता था। अतः अपने विपक्षियों द्वारा किये हुए इन सभी घोर कृत्यों को अपनी तरफ़ से कुछ निमक-मिर्च लगाकर अपने घर के वृद्ध लोगों के सामने रखना उसके लिए स्वाभाविक ही था।

चराचर की समस्त वस्तुओं को आसानी से शुद्ध करने की सामर्थ्य रखनेवाले गोबर पर हिन्दुओं की चाहे जितनी श्रद्धा क्यों न हो; परन्तु क्रिस्तानों को तो उसके ऊपर घृणा होना स्वाभाविक ही है। पड़ोस के लड़कों ने जो यह गड़बड़ी की थी, उसके सम्बन्ध में पावलू के घर के लोगों को कुछ ज्ञात न हुआ; परन्तु ऐसी गरमी के दिनों में जब सभी जगह पानी का टोटा था, पड़ोस के लड़कों की इस प्रकार की दुष्टता उनको अवश्य बहुत

खटकी। उस समय सान्तु शर्यो और पावलू—दोनों ही अपने घरों में न थे। अत: उन लोगों ने निश्चय किया कि दोनो के आने पर बावलू द्वारा लड़कों की दुष्टता का सारा हाल सान्तु शर्यो को बताकर उनकी फजीहत कराई जाय।

अगर सान्तु शर्यो और पावलू के जान लेने तक इन बातों का और आगे बढ़ाव न होता, तो भिसू, बावलू और सांतान को अपने-अपने पिताओं से एक-दो चाँटे अवश्य मिलते और वहीं पर फूलगाँव में सोनू के निर्माण किये हुए धर्मयुद्ध का उसी दिन शाम को अन्त हो जाता; परन्तु इस घटना को तो कुछ और ही रूप धारण करना था!

यह बात उसी दिन दोपहर के समय सांतान के पिता कप्तान के कानों तक पहुँची। कप्तान के लिए 'दोपहर का समय' किस प्रकार का था यह फूलगाँव में सभी लोगों को मालूम था। दोपहर के समय चाहे कितना हर्ज क्यों न हो; परन्तु कप्तान से कोई बात-चीत का मौक़ा न आने पाये, यह नियम फूल-गाँव में इन्हीं लोगों द्वारा एक-सा पाला जाता था। चालीस-पैंतालीस वर्ष की उम्र होगी, बड़ी ही शान्त प्रकृति और अच्छे स्वभाव का गृहस्थ; परन्तु दोपहर के समय तो जैसे अगिया-बैताल ही उसके शरीर में प्रवेश कर जाता हो। दोपहर के समय भोजन कर मनमाने काजू की शराब पीकर घंटा दो घंटा सोना, यह पथ्य उसकी नाजुक प्रकृति के लिए बहुत ही आवश्यक था, और इस नियम का वह कितने ही वर्षों से बराबर पालन करता चला आता था। ऐसे दोपहर के समय में छोटी से छोटी साधारण बात भी उसे पागल करने भर को काफ़ी थी, फिर आज की बात का तो कहना ही क्या था!

सांतान से भिसू और बावलू की शिकायत सुनकर और उसके गाल पर भिसू के थप्पड़ से जो अँगुलियाँ उछल आई थीं, उनको देखकर कप्तान का माथा फिर गया।

सोनू की कारगुजारियों की कई बातें कप्तान के कानों तक पहुँच चुकी थीं, इससे सोनू के प्रति उसका मन पहले ही से कलुषित हो चुका था। आज की सारी बातें सुनकर वह तुरन्त ताड़ गया कि हो न हो, इसमें सोनू का हाथ अवश्य है। उसकी लाल-लाल आँखें और मुख संताप से और अधिक लाल

हो गये। वह तुरन्त खाट पर से उठा और सान्तु शर्यौ के घर की ओर चल पड़ा।

'यह क्या ? यह परिणाम ? आज आठ दिन से लगातार बड़बड़ाकर लोगों को उभाड़ने का यह नतीजा ! देखो, आज बताये देता हूँ। यहाँ नहीं चलेगी वह शहर की चालाकी !'—इस तरह गुस्से में बड़बड़ाते हुए उसने बाग से गुज़रते समय अमरूद की एक डाली तोड़कर हाथ में ले ली।

सान्तु शर्यौ के ठीक दरवाज़े पर पहुँचकर वह खड़ा हो गया और एक बार चारों तरफ़ निहारकर, दाँत पीसते और ओठों को चबाते हुए उसने सोनू को धमकाकर कहा—क्यों रे बदमाश ! यह क्या तूफ़ान मचाया है तूने ? और किसी से भले ही चले, परन्तु कप्तान से यह नहीं चलेगा। मैं तुम्हारे कान उखाड़ लूँगा। क्यों रे।—लड़कों को कुएँ में गोबर डालने के लिए उकसाने की तुझे क्या ज़रूरत थी ?

'महाशय, सुनिए।' सोनू ने बड़े धीरे से और गम्भीर शब्दों में उत्तर दिया—आपके गुणी बालक ने कुएँ में एक हड्डी का टुकड़ा डाल दिया था, इससे वह सारा पानी खराब हो गया। जब कोई वस्तु अशुद्ध हो जाती है, तब हम हिन्दू लोग अपने शास्त्रों में बताये अनुसार उसे शुद्ध करने के लिए गोबर को काम में लाते हैं, यह तो आपको भी मालूम ही होगा ? बस, अब इसी से समझ लीजिए कि हम लोगों के कुएँ में गोबर डालने का क्या कारण था।

अपने इस बेजोड़ जवाब से कप्तान निरुत्तर हो जायगा, सोनू को ऐसी आशा थी ; परन्तु सोनू का अनुमान ठीक न निकला। कप्तान कुछ और आगे बढ़ा और कहने लगा—अभी कल का लौंडा, मुझे यह उपदेश देने चला है ? आया है, बड़ा पंडित बनकर ! कुएँ में हड्डी पड़ जाने से उसे पवित्र करेगा। मैं कुछ दूध-पीता बच्चा थोड़े ही हूँ, जो तेरी इन चालबाजियों में आ जाऊँ ! पाजी कहीं का !

'अरे कृपानिधान, कुमारी मरियम के पेट में ईसा जन्म लेने के लिए आये, इस बात पर तो आप विश्वास करते हैं ; परन्तु हमारे धर्म की इस बात को

आप झूठ समझते हैं ? अच्छा, मेहरबानी करके अब आप घर जाइए। और जब आप होश में आ जायँ तब आइएगा, तब मैं आपको अपना धर्मशास्त्र ठीक तौर से समझा दूँगा। अच्छा, अब आप पधारिए।'

आख़िर में मर्मस्पर्शी घाव करने के इरादे से कहे हुए सोनू के ये शब्द ठीक तौर से ख़तम भी न हो पाये थे कि कप्तान के हाथ की छड़ी तड़ातड़ उसकी पीठ पर पड़ने लगी। सोनू ने अपने मुँह के सहारे आत्म-संरक्षण करने की कोशिश की; परन्तु उसका कुछ भी उपयोग न हुआ। पाँच-छः मिनट तक कप्तान ने उसी तेजी के साथ अपने हाथों को चलाना जारी रखा और तदनन्तर उसने अपने घर का रास्ता लिया।

× × ×

पहले कारण और फिर कार्य, यही संसार का अविच्छिन्न नियम है। अगर कार्य का वास्तविक स्वरूप जानना हो, तो उसके कारण का अवलोकन करना आवश्यक हो जाता है; परन्तु कभी-कभी प्रथम दृष्टिगोचर होनेवाला कार्य मानवों के हृदयों पर अपना असर इतना जबरदस्त कब्जा जमा लेता है कि कारण पर निष्पक्ष विचार करने के लिए आवश्यक समानता का भाव उसके हृदय में बिलकुल रह ही नहीं जाता। बहुतों के हाथ से उनकी जिन्दगी में होनेवाली घटनाओं की जड़ अक्सर यही ग़लती हुआ करती है।

सान्तु शर्णौ और पावलू-द-ला के विषय में भी आज ऐसा ही हुआ। शाम के समय सान्तु शर्णौ घर आया। उसके पाँव रखने भर की देर थी कि घर के सभी लोगों ने कुछ नमक-मिर्च लगाकर कहा कि कप्तान ने शराब के नशे में किस तरह बिना किसी कारण सोनू को बेरहमी से मारा। केवल एकलौता नाती, वह भी कई वर्षों के बाद ननिहाल आया, उसके पीटे जाने की बात सुनकर सान्तु शर्णौ का हृदय सन्ताप की पराकाष्ठा को पहुँच गया। ऐसी स्थिति में बीती हुई घटना का कारण जानने के लिए उसने जो प्रयत्न किया, वह अधूरा ही हो, अथवा घरवालों ने दूषित कर दिया हो, तो इसमें क्या आश्चर्य ! फिर ऐसी उन्मत्त स्थिति में वह घरवालों से सारी बातें वास्तविक शान्त रूप में बताने के लिए भी कैसे कह सकता था।

'आज चार पीढ़ी से हम दोनों पड़ोसियों के बीच में कितना घरोपा था ; परन्तु पावलू के बाद यह नशेबाज़ कप्तान उसे कायम रखेगा, ऐसे लक्षण नहीं दिखाई देते। जो बात आज तक कभी नहीं हुई थी, वह आज हुई। अब सावधान होकर इन लोगों की शरारत का यहीं अन्त कर देना चाहिए, जिससे फिर कभी ऐसा प्रसंग न आवे।'—सान्तु शर्णे ने कातर और क्षुब्ध आवाज़ में कहा।

हमेशा की तरह उसी समय पावलू सान्तु शर्णे के यहाँ आया। दोपहर की सारी घटना का हाल उसे मालूम हो चुका था। सान्तु शर्णे के नाती ने गाँव के सब लड़कों को बहकाकर सांतान को पिटवाया, फिर कुएँ में गाय का गोबर डलवा दिया। कप्तान को 'शराबखोर' कहकर गाली दी और ईसा की निन्दा की—आदि एक तरफ़ की सभी बातें सविस्तार उसके सामने रखी जा चुकी थीं ; अतः उसको भी आग-बबूला होने में देर न लगी। सान्तु शर्णे को अपने नाती की करतूतें बताने के इरादे से वह घर से निकला, उस समय दोनों ही की चित्त-वृत्ति एक-सी थी, अतः उन लोगों की बातचीत को भयंकर रूप पकड़ते देर न लगी। प्रश्नों पर प्रश्न और उत्तरों पर उत्तर दिये जाने लगे। दोनों ही उस समय पागल हो रहे थे। इस तरह कुछ देर बीतने के बाद दोनों ही आपे से बाहर हो गये और इस हद तक पहुँचे कि 'आजन्म तेरे घर में मैं अब कभी कदम नहीं रखूँगा!' इस तरह कहकर पावलू अपने घर की ओर बड़बड़ाता हुआ वापस लौटा।

आज कितने वर्षों से इन दोनों पड़ोसियों के बीच गहरा प्रेम-भाव चला आता था। कभी भी खेती-बारी और घर-सम्बन्धी कोई विकट प्रसंग आ पड़े, तो पावलू को बिना सान्तु शर्णे की सलाह और मदद के कुछ भी न सूझ पड़ता था। उसी तरह पणजी में, सरकारी दरबारी अथवा कोर्ट-कचहरी का कोई भी काम आ पड़े, तो सान्तु शर्णे ख़ुद अलग होकर वह सारा काम बेखटके पावलू के ऊपर छोड़ ही देता था। घर की स्त्रियों को छोड़कर जब पुरुषों को कुछ दिनों के लिए कहीं बाहर जाने की आवश्यकता पड़ जाती थी, तब उनके सामने जो विकट प्रसंग उपस्थित होता था, वह 'जरा बाल-

बच्चों के ऊपर नजर रखना' बस इतनी सूचना देने से ही निश्चिन्त-सा हो जाता था। इस तरह का एक दूसरे पर अटल विश्वास था।

सान्तु शर्णौ के घर की स्त्रियाँ और लड़कियाँ बुनाई, कढ़ाई और कसीदा वगैरह के काम सीखने के लिए अथवा बच्चों का कुरता व टोपी ब्योंतने अथवा सीने के लिए और इसी तरह फूलों की माला आदि गूँथने के लिए पावलू के घर न जाती हों, ऐसा शायद ही कोई दिन हो, इसी तरह पावलू के घर की स्त्रियाँ भी लोनची मुरब्बा बनाने, पापड़ बेलने अथवा बूढ़ों के लिए दवाइयाँ और बच्चों के लिए घुट्टियाँ आदि पूछने के लिए कई बार सान्तु शर्णौ के घर जाती थीं।

शाम के समय बंसी लेकर नदी पर जाना और वहाँ पर रात में कढ़ी के लिए मछलियाँ पकड़ना—यह कप्तान का प्रतिदिन का काम था। परन्तु, मछली लेकर नदी से लौटते समय जब वह अपने पड़ोसी के घर के पास से गुजरता, तो नित्य ही बावलू और भिसू को पुकारकर पैसे-दो-पैसे उनके हाथ पर रख देना वह कभी नहीं भूलता था। दो-तीन दिन के अन्तर से पावलू के बाग से एक-आध चम्पा और संवती से भरी हुई टोकरी और कभी-कभी अमरूद, शरीफे, अथवा पपीते से भरी टोकरी सान्तु शर्णौ के घर अवश्य ही आती थी। इसी तरह सान्तु शर्णौ के घर से भी त्योहारों के समय अथवा अन्य उत्सव प्रसंगों के समय मिष्टान्न और पक्वान्न अपने इन क्रिस्तान पड़ोसियों के यहाँ अवश्य जाते थे। दोनों के घरों के बालकों के बीच की मैत्री का भी क्या कहना था! एक दूसरे के यहाँ खेलना, आस-पास के वृक्षों पर पक्षियों के घोंसले ढूँढ़ना तथा लोगों के काजू और करौंदों को खाना भिसू, बावलू और सन्तान इन त्रिमूर्त्तियों का हमेशा का ही काम था।

परन्तु इतने दिनो तक इस हेल-मेल और प्रेमभाव के साथ रहनेवाले इन दोनों कुटुम्बों के लोगों के बीच अब कितना अन्तर पड़ गया। उन लोगों के बीच का बोलना-चालना, आना-जाना, लेना-देना आदि सबका ही आज अन्त हो गया। भिसू, बावलू सांतान इन तीनों में अभी तक परस्पर का कुछ

थोड़ा-सा सम्बन्ध था; परन्तु वह इतना ही कि अपने-अपने घरों की हद से एक दूसरे को अँगूठा दिखाना और जीभ निकालकर चिढ़ाना और फिर अन्त में गाली देकर भाग जाना। इस साल गणेश-चतुर्थी के दिन और उसी तरह और दो-तीन त्यौहारों पर व्यवहार के तौर पर पावलू के घर से फूलों की भेंट न आई। उसी तरह पावलू के घर भी चर्च का उत्सव हो गया; परन्तु सेन्ट वाशितआवाँ की मूर्ति के सामने जलाने के लिए सान्तु शणै की मोमबत्तियों की भेंट उसके यहाँ न पहुँची। इतना ही नहीं, इन दोनों पड़ोसियों के बीच बार-बार छोटे-मोटे कारणों को लेकर झगड़ा-फसाद भी होने लगा। पावलू के घर के सूअर और मुर्गियाँ अभी तक शायद ही अपनी हद को छोड़ते हों; परन्तु अब तो अपनी हद को छोड़कर और सान्तु शणै के घर के बरतनों, कपड़ों आदि पर बैठकर उन्हें बिगाड़ने का मानो उन्होंने बीड़ा ही उठा लिया हो! बदला लेने के इरादे से सान्तु शणै की गाय-भैंस भी अब पावलू के बाग में अक्सर जाने लगी और केला तथा अन्य फलों के वृक्षों को तोड़-ताड़ और चरकर नष्ट करने लगीं। सान्तु शणै के घर के जूठी पत्तल और केला के पत्ते अब घूड़े के रूप में पावलू के सामने जमा होने लगे। और उसी तरह पावलू के घर से हड्डी के टुकड़े और मांस के टुकड़े तथा अंडों के छिलके सान्तु शणै के चबूतरे पर आकर इकट्ठा होते दिखाई देने लगे। अन्त में उसी प्रकार की एक घटना से खीझकर सान्तु शणै ने पावलू के ऊपर नालिश ठोंक दी।

सान्तु बाबा और पावलू—ये दोनों ही अपने-अपने समाज के प्रमुख थे; अतः इस मामले में गाँव की दोनों जातियों के सभी लोगों ने करीब-करीब अपने-अपने प्रमुखों का साथ दिया और इसके फल-स्वरूप अन्त में गाँव में अभी तक जिन-जिनकी कल्पना भी न होती थी, हिन्दू और क्रिस्तानों की ऐसी दो निराली पार्टियाँ तैयार हो गईं।

इस बीच में सोनू भी ननिहाल को छोड़ अपने घर जा चुका था। गोवा के एक साप्ताहिक में उसने 'परशुराम की भूमि में पुण्य पर्व!' लिखना शुरू किया। इस जोशीली लेख-मालान्तर्गत पहले छः कालम इसी बार प्रकाशित हुए। तमाम भारतवर्ष में घोषणा करने के इरादे से उसने आर्य-संस्कृति के

उद्धारणार्थ फूलगाँव के वीर हिन्दुओं की जागृति का रोमाञ्चकारी शुभ संवाद पहले-पहल लोगों को सुनाया।

× × ×

गोवा में उसी साल स्थान-स्थान पर जो भयंकर बाढ़ आई थी, उसे लोग अभी तक नहीं भूले। उसकी ज़रा-सी चर्चा कर दी जाय कि गाँव में फूलकर गिरनेवाले घरों, बह जानेवाले अनेक जानवरों और बाग-बगीचों में हुए नुक़सानों, मिट्टी में मिल गई माल-मिलकियतों, आपत्ति के शिकार होकर प्राण गँवानेवाले अनेक मनुष्यों, और इसी प्रकार नानाप्रकार की आपत्तियों का वर्णन सुनने को मिलेगा; परन्तु बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि फूलगाँव में ज़रा इस बाढ़ की बात उठा दो, तो प्रफुल्लित मन से लोग तुम्हें कुछ और ही कहानी सुनायेंगे। क्या आप जानते हैं, वह क्या है? सुनिए:

और गाँवों की तरह फूलगाँव में बाढ़ के समय लोगों को कोई नुक़सान नहीं पहुँचा हो, ऐसा नहीं; परन्तु उस प्रसंग में दैवघटना से उस गाँव में लोगों की कमी न पूरी होनेवाली एक महान् हानि की पूर्ति हो गई। अतः यह बाढ़ महाभयानक और हानिकारक होने पर भी लोगों को एक वरदान की तरह जान पड़ी।

दो-चार वर्षों में बहुधा फूलगाँव में बाढ़ आती थी और उसके थोड़े से हिस्से को डुबो देती थी। अतः फूलगाँव की तरह नदी के किनारे पर बसे हुए गाँवों के लिए यह बाढ़ कोई नवीन बात न थी। इसी लिए उस साल जब मृग नक्षत्र के आरम्भ में वर्षा दो-चार दिनों तक झड़ी लगाये रही, तो लोगों को कुछ विशेष चिन्ता न हुई; परन्तु पाँचवें दिन अचानक बाढ़ का भयंकर रूप देखकर लोगों के होश-हवास उड़ गये!

निश्चिन्त होकर निद्रा देवी की गोद में केलि करता हुआ सारा गाँव अचानक मध्यरात्रि के समय जाग उठा। पानी में बहे जाते हुए ढोरों, सुअरों और मुर्गियों के, अपने प्राणों के बचाव के लिए कातर-स्वर लोगों के कानों में पड़ने लगे। बीच में इधर-उधर एकाध घर के धड़ाम से गिरने की आवाज़ सुनाई पड़ने लगी। इसी तरह धीरे-धीरे नदी के पानी का प्रवाह और उसमें

बहकर आनेवाली छोटी-बड़ी चीज़ों का भीषण नाद प्रतिक्षण बढ़ने लगा। लोगों की भी दौड़-धूप शुरू हो गई। कीमती माल बचाने के लिए लोग जी-जान से प्रयत्न करने लगे। बहुत लोगों को, तो अपना घरबार छोड़कर प्राण बचाने के लिए दूसरों के अधिक मजबूत घरों और वृक्षों तक का सहारा लेना पड़ा।

ऐसे विकट समय में गाँव के अन्य लोगों को सान्तु शर्णौ और पावलू-द-सा से ईर्ष्या होने लगी। उन दोनों के घर गाँव के किनारे एक ऊँचे टीले पर थे और इसी लिए लोगों को ऐसा विश्वास था कि बाढ़ से कभी भी उनका कोई नुकसान न हो सकेगा। चालीस वर्ष पूर्व जो एक जबरदस्त बाढ़ आई थी, उस समय लोगों के इस अनुमान की ठीक तौर से परीक्षा भी हो गई थी।

शान्तु शर्णौ और पावलू-द-सा को भी ऐसा अटल विश्वास था कि बाढ़ से उनके मकानों को किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुँच सकती; परन्तु इस बार उन लोगों का यह विश्वास ठीक न उतरा। चालीस वर्ष पूर्व जो बाढ़ आई थी, उससे इस बाढ़ की कला बड़ी हद तक बढ़ी-चढ़ी निकली। सवेरे पौ फटते ही पानी चढ़ने लगा और थोड़ी ही देर में वह इतना चढ़ गया कि शान्तु शर्णौ और पावलू-द-सा के मकान भी डूबने लगे। पावलू के खास घर से कुछ दूरी पर, जहाँ की ज़मीन कुछ नीची थी, एक पुराना घर था और वह पहले ही बह चुका था, इस घटना की लोगों को खबर ही न थी। सवेरा होने पर उन्हें यह मालूम हुआ। जिस वेग के साथ पानी बढ़ रहा था, उसी वेग के साथ दोनों घरों के लोगों की चिन्ता भी बढ़ने लगी। थोड़ी देर में दोनों घरों का नीचे का महला जलमग्न हो गया और सब लोगों ने ऊपर के महले का आश्रय लिया। सान्तु शर्णौ ने श्री गणेश से महारुद्र की मानता मानी। पावलू ने भी सेन्ट फ्रान्सिस ज़ेवियर के नाम पर एक प्रार्थनोत्सव करने का प्रण किया।

सौभाग्य से कुछ देर में पानी बढ़ना बन्द हो गया; परन्तु उसके घटने के चिह्न फिर भी दृष्टिगोचर न होते थे। पानी के घटने की चिन्ता सान्तु शर्णौ के घर के लोगों को अधिक न थी, क्योंकि भूख निवारणार्थ जिन चीज़ों की

आवश्यकता थी. वह सभी उनके पास मौजूद थी; परन्तु पावलू के घर के लोगों के लिए तो अगर पानी जल्दी ही न घट जाय, तो बड़ी ही विकट समस्या उपस्थित हो जाय। गोड़ा में ही उनका रसोईघर और वहीं उनका भण्डारघर तथा भोजन के लिए आवश्यक अन्य चीजों को रखने की जगह थी। जब सारा गोड़ा ही बह गया, तब वहाँ अन्न के एक कण को भी ढूँढ़ निकालना उनके लिए मुश्किल था। ऐसी स्थिति में सान्तु शर्यौ के घर से उनकी अन्न-सम्बन्धी आवश्यकता पूरी हो सकती थी; परन्तु पावलू की अभिमानी वृत्ति ऐसी लाचारी हालत में भी उसे अपने पड़ोसी के पास जाकर उससे सहायता की प्रार्थना करने की सलाह देगी अथवा सान्तु शर्यौ अपने पड़ोसी पर आई हुई इस आफत को देखकर फिर एक हो उसे मदद करने का मनौदार्य दिखा-येगा, यह दोनों ही बातें बहुत कुछ असम्भव थीं। इस सबका कारण यह था कि सान्तु शर्यौ के कोर्ट में दावे के फलस्वरूप दो ही दिन पूर्व साक्षियों के बयान के बाद मौक़ा देखने के लिए दिन मुकर्रर हो चुका था।

अब जब तक बाढ़ का पानी उतर न जाय, तब तक गाँव के लोगों के पास जाकर उनसे किसी भी प्रकार की खाद्य-सामग्री प्राप्त करना मुश्किल था। इसका कारण यह था कि फूलगाँव में नदी की बाढ़ के बीच में ही एक भँवर स्थान था। इसी भँवर-स्थान से ऊचाई की ओर सान्तु शर्यौ और पावलू-द-सा के मकान और ढाल की ओर गाँव के अन्य लोगों के मकान थे। यह भँवर स्थान इतना टेढ़ा था कि जहाँ नदी का पानी थोड़ा बढ़ा कि उस स्थान पर भँवर नजर आने लगते थे। फिर अब तो भयंकर बाढ़ थी! पूर्व में कई बाढ़ों के समय इतने लोग इस भँवर-स्थान के पास अपने प्राणों को गँवा चुके थे कि लोगों के मन में गहरा विश्वास हो गया था कि इस स्थान पर कोई प्रेतवास होना ही चाहिए, यही समझकर गाँव के मछुए प्रतिवर्ष वहाँ पर मुर्गियों की बलि दिया करते थे। ऐसी स्थिति में पावलू अथवा उसके पुत्र कप्तान को उस पार जाने के लिए अथवा लोगों को उनकी मदद के लिए उस पार से आने में घरनई अथवा नाव-द्वारा उस भँवर को पार करने का साहस करना दुर्घट था।

पानी के उतरते ही गाँव के लोगों में तुरन्त चहल-पहल शुरू होगी और

अपने ऊपर आया हुआ यह संकट टलेगा, केवल इसी आशा-मात्र का पावलू के घर के सब लोगों को संबल बना रहा था।

परन्तु वह सारा दिन बीत गया और दूसरा भी शुरू हो गया; परन्तु पानी न उतरा। उलटे बीच-बीच में मूसलाधार वर्षा होने लगती थी। और पानी कुछ बढ़ता हुआ-सा दिखाई देता था। दो दिन के लगातार उपवास के कारण पावलू के घर के प्रौढ़ मनुष्यों तक के प्राण व्याकुल हो रहे थे, फिर सांतान और उसके छोटे भाइयों की क्या दशा होगी, इस विषय में कहना ही व्यर्थ है। भूख से व्याकुल होकर उन अज्ञान बच्चों ने इतने जोरों से रोना-चिल्लाना शुरू किया कि उनके पीछे घर के पिछवाड़े सान्तु शर्ये के घर के लोगों को स्पष्ट सुनाई देने लगा।

इसी तरह दूसरा दिन भी बीत गया और फिर रात्रि आई। भूख के मारे बच्चों का चिल्लाना उसी प्रकार जारी रहा। बच्चों की यह हालत देखकर बड़ों के हृदय दुःख के मारे विह्वल हो उठे।

बेचारी कप्तान की माता बाहर के पानी की तरफ निश्चल दृष्टि से देखती हुई अपनी खिड़की के पास बैठी थी। उसकी आँखें अश्रुपूर्ण थीं। 'पिता ईसा और मेरी को नमस्कार'—इस स्तोत्र का पाठ वह लगातार कर रही थी। बीच-बीच में भक्ति-पूर्वक वह अपने शरीर पर क्रॉस के चिन्हों को भी बनाती जाती थी।

इतने ही में अचानक एक आशा की किरण उसे दिखाई दी। तुरन्त ही कप्तान को पुकारकर बड़े कातर स्वर में उसने कहा—वह देख रहे हो? सान्तु शर्ये के घर के बीच में कटहल के वृक्ष में अटकी हुई कोई सफेद चीज़ दिखाई देती है? बहुत करके वह अपनी रसोई से बहा हुआ बेंत का पिटारा है; अगर ऐसा हो तो समझना चाहिए कि ईश्वर ने हमारी पुकार सुन ली। परसों रात को सुअरों के लिए मैंने उसमें कुछ पावरोटियाँ रख दी थीं। पानी में भीगने से वे अवश्य गल गई होंगी और खराब भी हो गई होंगी; परन्तु फिर भी अगर वे हाथ लग जायँ, तो हम लोगों की कुछ क्षुधा-निवृत्ति हो जाय!

उसके मुख से ये शब्द निकले भर थे कि कप्तान तुरन्त पानी में कूद पड़ा।

और लगा उस पेड़ तक पहुँचने। वह क्या लेकर लौटता है—सब लोग इसी की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करते रहे।

परन्तु एक ही दो मिनट में उन्हें सभी प्रकार निराशा हो गई। जल्दी-जल्दी पानी को चीरता हुआ कप्तान खाली हाथ वापस आया। दम तक न लेकर हाँफते-हाँफते उसने कहा—मैं तो उस पिटारे तक पहुँचा ही नहीं!

'यह क्यों?' उसकी माता ने अधीर होकर पूछा।

'यह क्या दादा? हमें कितनी भूख लगी है, उस पिटारे को ले आओ न।' रोते-रोते सांतान ने कहा।

'हमसे भी अधिक बढ़कर संकट सांतु शर्णो के घर के लोगों पर आ गया है। उस पिटारे के पास जाते समय उसके घर के पिछवाड़े की भीत का बाहर का भाग किस तरह गलकर पानी में गिर रहा है, इसकी आवाज़ दो-तीन बार मेरे कानों में पड़ी। अँधेरे की वजह से ठीक न दिखाई देता था; इसी लिए ज़रा मैं उसके नज़दीक गया, फिर क्या कहना था! सारी भीत पानी से फूल गई है और उसके बीच में एक बड़ा भारी सूराख हो गया है। किसे मालूम शायद एक ही दो मिनट में वह सारी भीत छप्पर आदि को लेकर नीचे बैठ जाय। उन बेचारों को इस आफ़त की गंध तक न आती होगी। इन सब लोगों के प्राण ही धोखे में हैं; यह सोचकर मैं पिटारे के पास जाने में समय न गँवांकर तुरन्त वापस लौट आया हूँ। मेरी समझ से तो उन लोगों पर आई हुई आफत की उन्हें तुरन्त सूचना देनी चाहिए और उन लोगों से अपने यहाँ आकर रहने के लिए भी कहना चाहिए।

'अवश्य! ऐसे मौके पर हम लोगों को उनके प्रति वैर-भाव बिलकुल भूल जाना चाहिए।' अनुकम्पायुक्त स्वर में उसकी माता ने कहा।

पावलू ने भी अपनी स्त्री के ही विचारों की पुष्टि की। तुरन्त ही कप्तान और पावलू ने मिलकर कुछ लकड़ी और तख्तों के सहारे एक प्रकार की घरनई बनाई और फिर कप्तान तुरन्त उस पर बैठ सान्तु शर्णो के घर की ओर चला।

उसी समय सान्तु शर्णो के घर में उसकी स्त्री अपने नातियों को भोजन परोसकर अपने पति से कहने लगी—सुना क्या, उस बेचारे पावलू के नातियों

की मारे भूखों की क्या अवस्था हो रही होगी, यह ईश्वर ही जाने। ऐसे मौके पर वैर-भाव को स्थान न देना चाहिए। क्या ऐसे समय हम लोगों को आपसी मनमुटाव की तरफ ध्यान देना चाहिए? अगर अब भी हम लोग पड़ोसी के धर्म को नहीं पालेंगे, तो यह ईश्वर को अच्छा लगेगा?

'मैं ही कब कहता हूँ कि हम लोगों को उनकी सहायता न करनी चाहिए? कल से ही बार-बार मेरे मन में आ रहा है कि एक टोकरी में उन लोगों के खाने के लिए सामान रखकर उन लोगों के पास तक पहुँचाऊँ; परन्तु उस पावलू का गुस्सा कोई साधारण थोड़े ही है। शायद ऐसे मौके पर भी वह कुछ जा-बेजा कह इस सबको स्वीकार न करे!'—एक महान् अपराधी की तरह सान्तु शर्मा ने कहा।

'वह कैसा भी हो; परन्तु अब यह टोकरी तो उसके यहाँ पहुँचाना ही चाहिए।' ऐसा कहकर दाल-भात भरी हँड़िया को एक टोकरी में रखकर सान्तु शर्मा की स्त्री ने उसे दिया।

सान्तु शर्मा ने तुरन्त अपनी धोती का काछा मारा और हाथ में टोकरी लेकर पानी में उतरा।

एक ही दो मिनटों में कप्तान और शान्तु शर्मा दोनों घरों के बीच में एक-दूसरे से मिल गये। एक-दूसरे को देखकर दोनों को ही बड़ा आश्चर्य हुआ।

'कहाँ जा रहे हो?' कप्तान ने प्रश्न किया।

'तुम्हारे ही यहाँ! बच्चों के लिए थोड़ा दाल-भात लाया हूँ। ऐसे मौके पर भी तुम्हारा इस प्रकार का अलगाव का भाव दिखाना और हम लोगों से खाने के लिए चीजें न माँगना और दो दिन इसी तरह बिताना, अवश्य बड़े आश्चर्य की बात है!'

'अच्छा रहने दो इन सब बातों को' कुछ शरमाकर परन्तु कृतज्ञता के स्वर में कप्तान ने कहा—पहले अपने घर के सब लोगों को इस घरनई द्वारा जल्दी से जल्दी मेरे यहाँ ले चलो। अब कुछ सोच-विचार करना अच्छा नहीं। तुम्हारे घर की दीवाल टूटकर गिरना ही चाहती है और इस बात को तुम बिलकुल नहीं जानते हो।'

सान्तु शर्णौ तुरन्त हाथों से पानी को काटता हुआ दीवार की तरफ़ बढ़ा और उसे देखा। कप्तान की बताई हुई बात को अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखकर सान्तु शर्णौ की छाती धड़कने लगी। उसने तुरन्त विष्णुसहस्रनाम का पाठ शुरू कर दिया और कछुए की तेजी से अपने घर के पास जा पहुँचा।

एक-दो मिनट में जब कप्तान की सहायता से घरनई द्वारा उसने अपने घर के सब लोगों को पावलू के घर तक पहुँचा दिया, तभी उसके जी में जी आया।

अन्त में सान्तु शर्णौ के घर की सारी अन्य सामग्री भी घरनई द्वारा पावलू के घर में पहुँचाई गई।

यह सब हो जाने के बाद शायद पाँच मिनट भी न बीते होंगे कि सान्तु शर्णौ के घर के पिछवाड़े बड़ा भारी धड़ाका हुआ। उसके बाद पानी में फूलकर बैठी हुई सारी भीत दिखाई दी।

थोड़ी ही देर में फिर एक धड़ाका हुआ और अब की बार घर का छप्पर भी नीचे आ गया।

पावलू के घर के बच्चे इस समय बड़ी अधीरता से दाल-भात के बड़े-बड़े कौर बढ़ा रहे थे। सान्तु शर्णौ की स्त्री पावलू और उसके घर के अन्य लोगों के सामने भोजन परोसने में लगी हुई थी।

पानी में गिरे हुए अपने घर के छप्पर को देखकर कृतज्ञता-पूर्वक सान्तु शर्णौ ने कहा—अन्त में पड़ोसी धर्म ही हमारे काम आया न पावलू?

'हाँ भाई, अपनी ही तरह अपने पड़ोसी से प्रेम करो, यह तो हमारे प्रभु ईसा की आज्ञा ही है।' पावलू के भरे हुए गले से शब्द निकले।

इस तरह नदी की इस बाढ़ ने, गत दो-तीन महीनों से इन पड़ोसियों के हृदयों पर जो एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्या-द्वेष का पुट चढ़ा दिया था, उसको धो डाला। उसी तरह फूलगाँव में हिन्दू और क्रिस्तानों के बीच जो आग धधक रही थी, उसके बुझाने की भी यह बाढ़ कारण हो गई।

फूलगाँव की स्थिति में इस प्रकार का परिवर्तन सुनकर समाचार-पत्रों में प्रकाशित सानू की सनसनाहट भी सज्जपुर में गंगा की धारा की तरह अचानक लुप्त हो गई।